गुहा के गुरु जी

गुहा के गुरु जी

श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज जी की जीवनी
का एक अंक

लेखक :—

दासानुदास- (स्वामी) कालिकानन्द जी

वशिष्ठ गुहा

प्रकाशक:- (मुद्रण आदि का व्यय निर्वाहक)

प्रभुभक्त:- श्री जगन्नाथ लखनपाल (हैडमास्टर)

पो: धनीपिण्ड

ग्राम लखनपाल

जिला जालन्धर (पंजाब)

† आवेगा †

तुहारि मूरति आंकूं कैसे ?

निरुद्ध जगत् अन्ध आखिते ।

अपार महिमा तब कहां पारावार ?

क्या हमारी शक्ति, उठाऊं तनिक भार ।

मालूम सिरफ सार चरणवज तुहार भरोसा है ।

करो आशीर्वाद बारि बर्षा है ।

हे पुरुषोत्तमानन्द,

मन्द अहं अतीव मन्द ।

त्वम् मि मकरन्द.

बन्दे अहं त्वम् वन्दे ।

प्रभुपादरज प्रार्थी

(स्वामी-- कालिकानन्द)

विषय सूचि

9/58

निवेदन

"ध्यानमूलम् गुरुमूर्ति, पूजामूलम् गुरोः पदम्
मन्त्रमूलम् गुरुर्वाक्यम्, मोक्ष मूलम् गुरुकृपा"

श्रद्धेय गुरु जी, जो अनन्त गुणों की खान हैं उनके गुणों को अपने समाचार पत्र में छापने के लिए एक सम्पादक ने ही कुछ प्रसंग मुझ से मांगे थे सच है कि इस जगत् में मनुष्यतम और मुमुक्षुतम तथा महापुरुष प्रसंग ही जीवन के श्रेष्ठतम लक्ष्य हैं। मनुष्य जन्म जैसे दुर्लभ है । इसी भान्ति महापुरुषों का संग प्राप्त होना भी दुर्लभ से दुर्लभ होता है। केवल हिन्दु मात्र ही नहीं बल्कि धर्मावलम्बी समुदाय भी जानते हैं कि उस परमपद (प्रभु की प्राप्ति) मुख्यतः महापुरुष के हाथों में ही है। आगे भी थी अब भी है और आगे भी होगी । हम देखते हैं कि इस संसार में हम कैसे भी क्षेत्र में हों, किसी वस्तु के भी ज्ञान के लिए हमें दूसरों का सहारा लेना पड़ता है इसी प्रकार अध्यात्मिक

जगत में भी सतगुरु का आश्रय लेना पड़ता है। मुक्ति के लिए शास्त्र में उल्लेख है **'मोक्षमूलम् गुरुकृपा'** इस में भ्रान्ति कैसे हो सकती है कि हम महापुरुष की ओर न चलें। एक बात और भी है कि जहां कुछ दिखाई दे वहां आवश्यक नहीं कि सोना भी हो क्योंकि प्रायः देखा गया है कि 'हाथी के दांत खाने के और तथा दिखाने के और'। किसी भी गेरूए वस्त्रधारी व्यक्ति को सन्त या महापुरुष के नाम से उच्चारण करना अथवा एक दम महापुरुष की ही उपाधि दे देना युक्ति से बाहर है। क्योंकि ज्ञानी लोगों का यह वचन है कि :—

"पानी पीओ छान के, गुरु करो जान के"।

अपनी भक्ति और दृढ़ विश्वास के साथ किसी को भी अपना गुरु माना जा सकता है। पर महापुरुषों का संग प्राप्त होना तपस्या के ही फल से संभव होता है। तुलसीदास जी ने भी कहा है कि :—

"बिना भाग्य से मिले नहीं सन्ता"

और भी जैसा कहा है कि :—

"सन्त समागम हरि कथा"

इत्यादि ये पंक्तियां भी यही बताती हैं कि सन्त लोगों का मिलना भी बड़ा कठिन है।

गुरु जी के दर्शन एवम् क्रियाक्रम ऐसा प्रतीत होता है कि वे प्राचीन ऋषि ही हैं। गुरु जी की जीवनी को लिखना मानों प्राचीन ऋषियों का ही आदेश रखना है। इसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही ऐसा लिखने में प्रवृति हुई ताकि जनता की गुरुदेव के आदेशों को जान कर अर्थात् पुरातन सिद्धान्तों को पाकर अपने को ऊपर उठाले मेरा यह मतलब नहीं कि यह पवित्र लेख कागजों में ही (पुस्तक में) पड़ा रहे मेरा मतलब तो यह है कि लोग इसके लेख के महान् आदर्शों पर चलते हुए तथा गुरु देव का स्मरण करते हुए अपने जीवन को सफल बना सकें।

महापुरुष (पुरुषोत्तमानन्द) की पवित्र जीवनी का पूर्णतः वखान मेरी शक्ति से बाहर है। अपनी बुद्धि का प्रयोग तो उनके समक्ष सूर्य को दिया दिखाने तुल्य के है।

इस लेख को, समाचार पत्र के सम्पादक की इच्छानुसार तुरन्त ही पूरा कर लिया और में प्रकाशक की राह देखने लगा। पर दैव इच्छा प्रवल होने के कारण वह सम्पादक मुझ से न मिल सका। लेख वैसे का वैसा ही पड़ा रहा। कुछ दिनों के अनन्तर इस पुस्तक के प्रकाशक श्री जगन्नाथ जी हैडमास्टर देवप्राग की यात्रा समाप्त कर मेरे यहां पहुंचे और बातचीत के अन्तर्गत उन्हों को इस पवित्र लेख के विषय में जानकारी हुई और उन्होंने इसको छपाने का तुरन्त ही निश्चय कर लिया। यह सज्जन बड़े देव, द्विज और गुरु भक्त हैं और पवित्र दिल के हैं। उनकी ऐसी मानसिक इच्छा देखकर मुझे भी हार्दिक प्रसन्नता हुई और मैंने अपने उस लेख में परिवर्तन करके उसको पुस्तक रूप में इनके पास भेज दिया।

आशा करता हूं कि यह कार्य जल्दी ही समाप्त हो जायेगा और गुरुदेव की ८० वर्ष की गांठ पर यह भक्ति उपहार श्रद्धांजलि के रूप में भेंट करुंगा। पाठकों से सानुरोध प्रार्थना है कि जहां कोई गल्ती हो उसके लिए मुझे क्षमा करे और महात्मा जी के जीवन के महान् आदर्शों पर ध्यान देते हुए अपने जीवन को सफल बनाने की चेष्टा करें।

विनीत—कालिकानन्द

वशिष्ठ गुहा
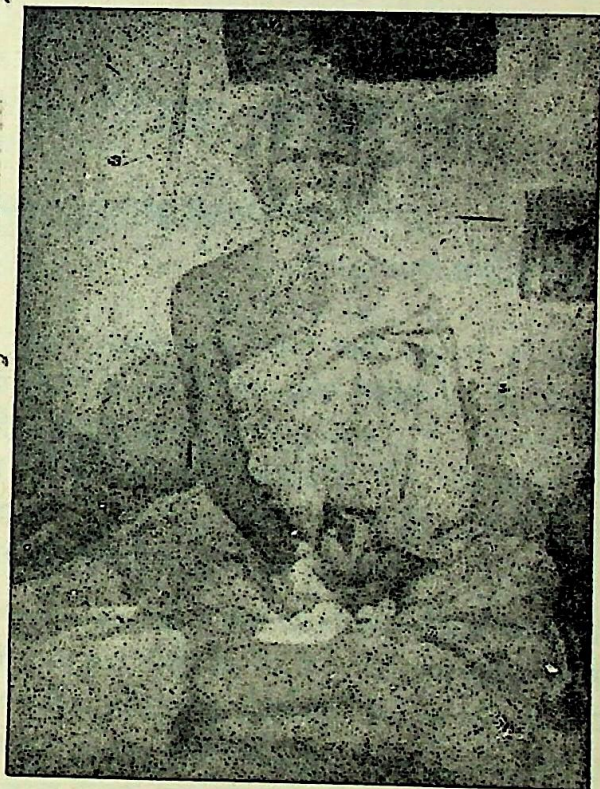
अनन्त गुण विभूषित
श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज
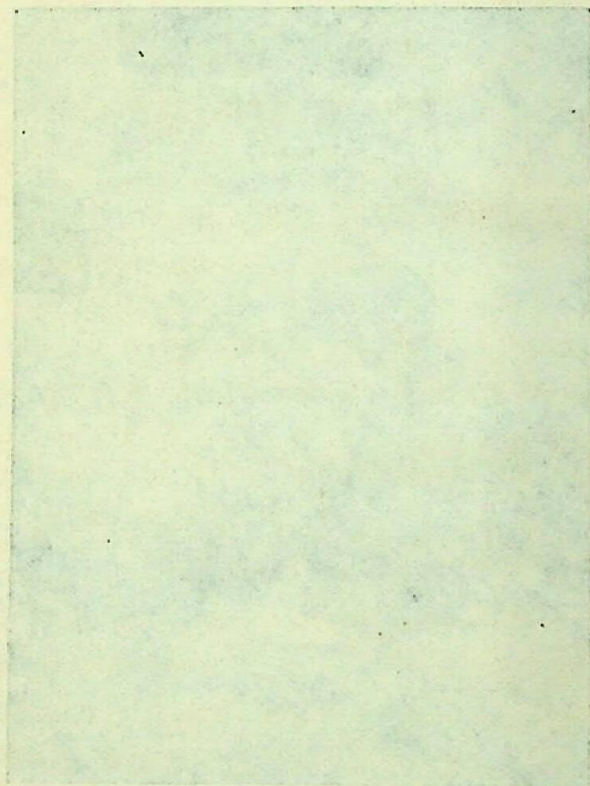
गुहा के गुरु जी

ओ३म् तत् पुरुषाय विद्यमहे पुरुषोत्तमाय,
धीमहि तन्न ब्रह्म प्रचोदयात् ।

'ब्रह्म से उत्पत्ति ब्रह्म में लय' यही परमात्मा की लीला और उस का विधान है। दृष्टि को जो सृष्टि दिखाई देती है, यह उसी का कार्य है और कार्य का कारण भी वह स्वयं ही हैं। वस्तु एक, पर अन्तर अनन्त हैं। इसी अन्तर का पार पाने के लिए ब्रह्मा जी रह गए, ऋषि मुनि हार गए, शास्त्र नेति २ कह गए, हमारी तो बात ही क्या जो मीमांसा कर सकें।

सर्वंखल्विदं ब्रह्म—सब ब्रह्म ही ब्रह्म—केवल ब्रह्म ही ब्रह्म होते हुए भी लीला रूपी जीव भिन्न रूप हैं। यह बात अज्ञान वा माया का ही पसारा है। हां ज्ञान के पश्चात् इस सृष्टि का जीव भी आत्मा का अनुभव कर एक वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर लेता, और यह भी जान लेता कि अन्तराल में वह ब्रह्म ही अनेकानेक रूपों से मिट गये हैं। "एक ब्रह्म द्वितीयो नास्ति। एकमेव द्वितीयम्।" एक का ज्ञान होना ही ब्रह्म में लय, ज्ञान या मुक्ति है। और इसी की पूर्ति साधन है और इसी को ही कर्म अथवा धर्म बतलाया गया है।

जीव और शिव की अभेदता और अद्वैत्य, ज्ञान से ब्रह्म में लय या मुक्ति की बात जन तक है, यह मनुष्य मात्र के लिए ही हुआ करती है और उसी के ही हाथ में है।

'ब्रह्मविद ब्रह्मैव भवति— साधन सम्पन्न—व्यक्ति अर्थात् ब्रह्म में चित्त लगाने वाला ब्रह्मरूप ही हो जाता है। जीव भी स्वतन्त्र है क्योंकि यह तो उसी का अंशांश या रूप है न? कर्म का फल तो कर्ता को ही भोगना पड़ता है। सो जीव कर्म के फलाफल को लेकर ही जीव जीव में आकर चलता रहता है। तुलसीदास जी का निम्नलिखित दोहा इस बात का प्रमाण दिलाता है कि :—

तुलसी काया खेत है मनसाभयो किसान।
पाप पुण्य दो बीज हैं जो बुबै सो लुनै निदान ॥

अतः जीव और ब्रह्म में अनन्त भेद हैं। सृष्टि अनादि और जीव अनगिनत हैं। साधनों से प्राप्त किया हुआ ज्ञान ही उत्तम ज्ञान है जो हर प्रकार की बात की आलोचना करने में समर्थ हो सकता है। इसी लिए कहा गया है कि :—

'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' अर्थात् गुरु कृपा से आत्मज्ञान प्राप्त करके क्षण में ही मनुष्य अपने आप को मुक्त कर सकता है।

आज भी अनेकों नर नारी भौतिक संसार के सुख दुःख में किसी प्रकार की रुचि न रखते हुए चिर शान्ति के पथ को ढूंढते हैं। हां! नाशवान चीजों का सुख भी तो नाशरूप ही होगा। लय, प्रलय या परिवर्तन यह दैनिक कार्य है। यह संसार तो नाशवान है फिर भी जो

मनुष्य इस से बचने के लिए उत्साहित नहीं होते वह कितने अभागी हैं। हमें यह मालूम होना चाहिये कि ईश्वर अपने विधानों तथा जीवों के शाश्वत सुख को बताने के लिए गुरु रूप बनकर भक्ति आदि शास्त्र विहित कर्म का उपदेश देकर मुक्ति तथा ज्ञान को पाने का रास्ता बताया करता है। बुद्धिमान् लोग सत्गुरु के उपदेश हंस की भान्ति सारहीन बात को छोड़ कर सारयुक्त बात को ग्रहण करते हैं। गीता में स्पष्ट और पुष्ट कर यही कहा गया है कि :—

तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेशयन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः॥

हम अपने आप से पूर्णरूप से अपरिचित हैं इस लिए अपना व्यक्तिगत परिचय हम कैसे दे सकते हैं। वास्तव में अपने स्वरूप का परिचय जानने के लिए ही तो प्रभु की शरण में आया हूं (कालिकानन्द)। इसी तथ्य की प्राप्ति के लिए मुझ मन्दबुद्धि को युग से अधिक बीत गया है। आज भी बहुत से लोग आकर पूछते हैं कि शान्ति का उपाय क्या है? मुझे भी अनेकों आगन्तुक आग्रह के साथ प्रभु जीवन रहस्य के बारे में पूछते हैं। इस तुच्छ लेख का कारण एक ओर यह है कि लोगों का बहुत आग्रह था दूसरी ओर गुरु जी के विषय में कुछ न कुछ लिखना मेरा कर्तव्य भी है। अतः गुरु जी की पवित्र जीवनी को जन-समाज के सम्मुख रखना परमावश्यक भी है।

फारसी में भी कहा है :—

कद्रे ज़र जरगर बदानद।
कद्रे जौहर जौहरी॥

अर्थात् जौहरी ही जौहर की पहचान कर सकता है। अपने आप को अनभिज्ञ मानकर पुनः महापुरुषों की जीवनी लिखना मानो सूर्य को दीपक दिखाना है। सन्तों की पहचान करना कठिन है। सन्त का मनोगत भाव वेदरूप ही है। वेद को पढ़कर जैसा हम ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। ऐसा सन्त के बताये हुये वचन से भी वेद सदृश्य ज्ञान प्राप्त हो जाता है। कहा गया है कि सन्त की महिमा वेद नहीं जानते। तपस्या से वेद की उत्पत्ति हुई और तपस्या ऋषियों ने ही की थी। इस लिए वेद का जन्मदाता सन्त ही हुआ। सन्तों का जीवन किस प्रकार बताया जा सकता है जो तपस्यारत और वेद सदृश्य है। तुलसीदास जी ने कहा है कि :—

सब जानत प्रभु प्रभुता साईं ।
तदपि कहे बिन रहा न जाईं ॥

अव्यक्त परमात्मा के प्रतिरूप महात्मा भी अव्यक्त हैं सो महात्मा के चरित्र भी अव्यक्त ही हैं, महात्मा के जीवन भी अव्यक्त ही हैं। एक अनुमान से कहता हूं कि यदि हम किसी पर्वत की चोटी पर पहुंचें तो हम एक दम कह उठेंगे कि चोटी ही सब से ऊंचा स्थल है परन्तु यह बात नहीं। यदि हम और किसी दशा से जाकर उसी पर्वत की किसी दूसरी चोटी पर पहुंचें तो वह चोटी पहले की अपेक्षा अधिक ऊंची दिखाई देगी और यही मालूम होगा कि यही अन्तिम स्थल है, पर यह नहीं, कारण और चोटी तो भी ऐसे ही ऊंची लगेगी। इसी प्रकार ज्ञानी व ज्ञान को परखना भी सीमा के बाहर है। साधारण व्यक्ति ज्ञानियों को नहीं पहचान सकते। कारण ज्ञान भी नये से नये हमारे विचार में आते हैं। जो जिस

प्रकृति का व्यक्ति होगा, वह अपनी धारणा के अनुसार वैसा ही ज्ञान प्राप्त कर लेगा। यह भी देखा गया है कि जब प्राणायाम से प्राण और अपान वायु को योग क्रिया द्वारा कुम्भक कर प्राणवायु को हृदयस्थल से लेकर ऊपर की दिशा में कण्ठदेश, नेत्र या भृकुटि में अर्थात् दशम द्वार तक ले जाते हैं तब साधक उसी अवस्था के ज्ञान का भी परिवर्तन जान लेते हैं। ऐसी अवस्था में हम उस वृत्ति में नहीं रहते जिस में पहले थे। ज्ञान का परिवर्तन स्वाभाविक है। अर्थात् यह स्वभाविक ज्ञान मन का है। मन प्राणों का आधार है। प्राणायाम से ही ज्ञान का पदाक्षेप हुआ। यदि ठीक प्राणायाम की विधि से प्राण को उपरोक्त दशम द्वार या ब्रह्मरंध्र में स्थित कर लिया जाये तो वही समाधि अथवा चिर शान्ति कही जा सकती है, वही ज्ञान है। नहीं तो ज्ञान तो सीमा-रहित है जिसे हम तय नहीं कर सकते और यह वस्तु विशेष भी नहीं जिसे तोल सकते हैं अथवा कह सकते हैं। एक बात और भी है कि साधारण मनुष्यों की अपेक्षा ज्ञानी लोगों का मन सदैव सतगुण में रह कर शुद्ध रहता है। अर्थात अपने को स्वलोक में रखता है जिस के कारण इन्द्रियां उस ज्ञानी के मन को वशीभूत नहीं कर पातीं। इन्द्रातीत होकर ही महात्मा लोग महात्मा रह सकते हैं और शान्ति प्राप्त कर लेते हैं जिस से हम उन को सन्त कहते हैं। इन्द्रातीत होकर दिव्यज्ञान या चिन्मय भाव में रहने का नाम ही सन्त है, ज्ञानी है। प्राणायाम ही एक मुख्य वस्तु है जिस के अभ्यास से हम बिना विचार से ही ज्ञान प्राप्त कर चित्त को शुद्ध कर सकते हैं और साथ ही उस ज्ञान से ज्ञानी की परख कर सकते हैं। मुझ (कालिकानन्द) में इतना ज्ञान तो है नहीं जो प्रभु के दिये ज्ञान को बता सकूं और उनके बताये हुए कर्म का ज्ञान करा सकूं। मैं ने कोई साधन तो नहीं किया जो उन के (प्रभु के) पूर्णज्ञान को बताने में समर्थ हो सकूं। सो इस में जो ठीक बात होगी

वह यथार्थ में महान् गुरु की होगी और जो त्रुटि रहेगी वह मेरी होगी।

ये महापुरुष इस पुण्य भारतभूमि के जिस स्थलमें प्रकट हुए इस प्रदेश का नाम मालयालम (केरल) है। आप के जन्म का श्रेय केरल देश के एक छोटे ग्राम चन्द्र शिलाघाट को है। उसी गांव को ट्रिवेन्ड्रम जिले में तिखुला नाम से भी पुकारा जाता है। इन के घर का नाम कुजिभिल और वंश का नाम कुरुपपिलै था। यह वंश नायर वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन की माता का नाम पार्वती अम्बा और पिता का नाम नारायण पिलै (Pilley) था। पार्वती अम्बा को पुत्र न होने से वंश की परम्परा अस्ताचल प्रायः थी। बड़ी चिन्ता लगी हुई थी और पुत्र की कामना से नारायण पिलै ने अनेकों यज्ञ आदि किए।

सुना है देशाचार की प्रथा के अनुसार महीनों भर ऐसे अनुष्ठान घर पर चलते ही रहते थे। जिस के फलस्वरूप नारायण पिलै के घर पुत्र उत्पन्न हुआ। इस दिव्य ज्योति का आविर्भाव १८७६ ई० के वृश्चिक महीने में तथा शुक्ला पक्ष दशमी के दिन उत्तराषाढ़े नक्षत्र, धनुष राशि में हुआ, इनका नाम नीलकण्ठ रखा गया नीलकण्ठ यथार्थ में नीलकण्ठ शिव के समान ही थे। इन की पवित्र जीवनी से पता चलता है कि इन्होंने पारिवारिक सुख का मुख भी नहीं देखा। तभी हम इन का नाम सुनते ही आश्चर्य चकित रह जाते हैं। क्योंकि बचपन से लेकर आज तक इनके जीवन का यही कार्यक्रम था, "दुःखों को सहन करना।" यह है कि दुःखों को प्राप्त करने के बिना सुख कैसे मिल सकता है ? इनका सब विद्याध्ययन भी अच्छी प्रकार न हो पाया। क्योंकि ये प्रायः रुग्ण से ही रहते थे। ऐसी परिस्थिति के बीच में भी मद्रास स्टैंडरड की (S. L. C.) अर्थात् इधर के मैट्रिक स्टैंडरड के बराबर की डिग्री इन्होंने प्राप्त

की। किन्तु रोगों से ही सदा ग्रस्त रहने के कारण इन की शिक्षा और आगे न हो सकी। बचपन से ही ये बड़े मेधावी थे।

एस. एल. सी. की परीक्षा में इन्हों ने प्रथम स्थान प्राप्त किया था केवल अपनी कक्षा में ही नहीं, अपितु विद्यालय भर में ये एक विशेष पात्र के रूप में सब की नजरों में थे। इन की बुद्धि और मनुष्यता को देख कर इन को Tiger of Allepy कहा जाता था।

हमें बड़े शोक से कहना पड़ता है कि रुग्णावस्था के कारण इन की शिक्षा जारी न रह सकी। वास्तव में मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि ये भौतिक जगत के विद्यालयों के विद्यार्थी न थे बल्कि अध्यात्मिक जगत के विद्यार्थी थे और विद्या भी वही है जो मुक्ति को देने वाली है। इसी लिए कहा गया है कि "सा विद्या या विमुक्तये" इन्हों को इस बात के लिए कोई अफसोस नहीं था कि मुझे शिक्षा न मिल सकी क्योंकि भगवद् आराधना की ओर ही आप की विशेष रूचि थी और उसे ही आप सबसे बड़ी विद्या मानते थे। रुग्णावस्था से छुड़ाने के लिए आप के घर वालों ने अनेकों उपाय किए परन्तु सब व्यर्थ ही रहे। अन्त में अपने रोगों से तंग आकर वहां के ही एक विख्यात मन्दिर में जाकर आत्म समर्पण किया, जहां कि दूसरे भी लोग अपने रोगों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए आया करते थे। उस मन्दिर का नाम 'गुरूवायूर' है जहां आज भी वैसी ही भीड़ लगी रहती है। घर वाले भी जल्दी ही राजी हो गए और चन्द दिनों के लिए उन्हों ने इन को उसी मन्दिर में रहने की आज्ञा दे दी और रहने की भी व्यवस्था कर दी। वहां स्वामी जी भगवद् भजन में ही रात दिन लगे रहते थे। जैसे तुलसी दास ने भी कहा है :— "बिना भय हो नहीं प्रीति"

भक्ति के फलस्वरूप ये जल्दी ही रोगमुक्त हो गए और घर को लौट आए। घर में बड़ी प्रसन्नता फैलने लगी। पर भगवद् प्रेमियों के घर में आनन्द का स्थान कहां ? कुछ दिनों के पश्चात् इनके माता पिता का देहान्त हो गया। मद्रास के नियमानुसार कन्या भी अपने पिता की सम्पति की पुत्र के बराबर की मालिक है। अतः इन की देखरेख मामा जी के ऊपर रही। मामा जी ने अपने भानजे को (नीलकण्ठ) पुनः विद्यालय में प्रविष्ट किया परन्तु दैव इच्छा के कारण इन को फिर वही रोग हो गया इस बार आप ने औषधियों पर कोई भरोसा न किया। पिता का दाहकर्म संस्कार करा कर घर में ही आप भजन और पूजा पाठ करने लग गए घर में ही शास्त्रों का अध्ययन करने लगे। और कुछ दिनों के अनन्तर ही संस्कृत भाषा में आप को बहुत ज्ञान हो गया और भगवद् गीता आदि बड़े बड़े ग्रन्थों को भी समझने लग पड़े। उस समय श्री रामकृष्ण परमहंस की तरह ये भी एक मन्दिर के पुजारी थे। उस समय नायर वंश वालों का विवाह ब्राह्मणों से हो जाता था। इन के माता पिता के सम्बन्ध से भी यही उदाहरण मिलता है। आप जीविका उपार्जन के लिए अध्यापक के रूप में काम करने लगे। इस प्रकार आप का ज्ञान और भी बढ़ गया। मन्दिरों में आप कभी २ लोगों को भगवद्गीता की कथा भी सुनाया करते थे। इस कारण लोग आप से बहुत प्रेम करने लगे और आवश्यकता पड़ने पर वही श्रोता आप की सभी आर्थिक आवश्यकता पूरी करते थे। हम ने सुना है कि स्वामी जी स्वयं भी कविता लिख कर लोगों को सुनाया करते थे। वह कथा कविता अब भी लोगों के घर से मिल जाती है। बहुत कहने पर भी आप दाम्पत्य जीवन के सुख से सदैव दूर रहे। इस के बाद आप वैराग्य लेकर घर से बाहर जाकर हरिपद नामक स्थान पर पहुंचे और

वहां के स्वामी निर्मलानन्द जी को ही अपना गुरु मानकर उन की सेवा करने लगे। तत्पश्चात् आपने तपस्या के प्रसार के लिए मद्रास से लेकर उत्तर खण्ड तक तथा कलकत्ता से लेकर पश्चिम दिशा में स्थित अमरनाथ और साथ के छोटे बड़े तीर्थस्थानों की यात्रा की। इस यात्रा के बीच में आप वशिष्ठ गुहा में पधारे। तत्पश्चात् जन्मभूमि लौट गए। फिर गुरु जी की आज्ञा से अपने गांव में जो आपने आश्रम बनाया था वहां भी आए। उस समय आश्रम में उस व्यक्ति ने जिसे आप आश्रम सौंप गए थे आप का स्वागत नहीं किया और आप की ओर से मुख मोड़ लिया। उन लोगों ने यह सोचा था कि स्वामी जी कहीं आश्रम के मालिक न बन बैठें। स्वामी जी ने उन लोगों के मनोगत भावों को जान लिया और उस स्थान के लिए लड़ाई करना इस लिए उचित न समझा कि ऐसा करने से उस स्थान को ही तुच्छ बनाना है। अतः आप उस विषय में उदास रहे। आप को गुरुजी ने इन लोगों का जो उस आश्रम में रहते थे, मुखिया बनाकर भेजा था पर उन्हीं गुरु जीके शिष्यों ने ही गुरु जी की बात की अवहेलना कर दी। आप सन्त प्रकृति के थे और सन्त प्रकृति के ही रहे। इस के बाद आप बेलूरमठ में आए और प्रेज़िडेंट स्वामी ब्रह्मानन्द जी से मन्त्र दीक्षा ली और स्वामी शिवानन्द जी से संन्यास दीक्षा ली। संन्यास लेने के तुरत बाद उत्तर खण्ड की यात्रा पर चल पड़े और हरिद्वार, ऋषिकेश होते हुए ब्रह्मपुरि से वशिष्ठ गुहा में आए।

अब मैं मुख्य २ बातें लिखकर ही इस लेख की समाप्ति करूंगा।

नीलकण्ठ जी का एक छोटा भाई और भी था परन्तु बड़े होने के कारण प्रत्येक बात का उत्तरदायित्व आप पर ही था। परन्तु

इसका क्या कारण था जबकि आप घर के मालिक थे। पूर्वजन्म के संस्कार ही मनुष्य को आगे खींच ले जाते हैं। माता पिता का देहान्त हो जाने के कारण अपने आप, आप के अन्दर वैराग्य उत्पन्न हुआ। संसार नाशवान है यह ज्ञान आपको माता पिता के देहावसान के पश्चात् ही पता चल गया। एक कारण और भी है कि जब वचपन में गुरु वेयूर मन्दिर में गए थे इससे भी पता चलता है कि वैराग्य भाव आप के मन में बचपन से ही था। राह में वहां आपको एक दूसरा बालक मिला जो बीमार सा था वहां आप को यह भी पता चला कि उस बालक को क्या रोग था। उस रोग को देखकर आपका मन और भी उच्चाट हो गया और वैराग्योन्मुख होने लगा। और उस की हालत देखते हुए आपने सोचा कि शरीर दुःखों का घर ही है इस संसार में सुख क्या और कहां ? इस प्रकार आपका मन संसार से उच्चाट हो गया। बचपन में पहले ही एक ब्राह्मण से आपने गुरुवेयूर (मन्दिर का नाम) की महिमा के विषय में सुन रक्खा था जिस कारण वहां रहने की ही आपकी रुचि हो गई। अतः एक दिन सचमुच नीलकण्ठ उस मन्दिर को रवाना हो गए। बिना किसी को बताए कुछ सामान लेकर मन्दिर में पहुंचने के लिए चल पड़े। परन्तु इनको स्वयं भी उस मन्दिर का रास्ता मालूम नहीं था। वैसे ही आप चल पड़े थे। "कि आप बिना विचार के, और जाते रहे वहां जहां ले जात रहा भगवान।" मन में किसी प्रकार का भय भी नहीं था। परन्तु रास्ते से आप अनभिज्ञ थे, क्योंकि बालक ही तो थे बाहर के वातावरण को क्या जानते थे ? चलते २ माता की याद आ जाने पर आप ठहर भी जाते थे परन्तु जब आगे जाने की बात सोचते थे तो दो कदम बड़ी तेज़ी से चलते थे। क्योंकि ऐसा कौन पुरुष होगा जिसे माता की

याद न सताती होगी। माता पिता का प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ है। अतः इसी प्रकार विचलित से आप चलते ही गए क्योंकि आगे जाना ही तो उन्नति पथ पर बढ़ना है। दैव इच्छा से वही बालक जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है, आपको रास्ते में मिला और कहने लगा, "भाई ! हम ने भी तो मन्दिर में जाना है क्यों नहीं हमारे साथ एक साथ ही चलते दोनों आनन्द में चलने लगे।

यात्रा बहुत लम्बी थी क्योंकि पैदल यात्रा करने का रास्ता था। चलते २ आप चेंगानारसी स्थान पर पहुंचे। ईरनाकुलम से होते हुए फिर त्रिचूल पहुंचे और उसके बाद गुरुवेयूर जो सबके बाद में आता है पहुंचे। चेंगानरसी से नाव पर ईरनाकुलम आना पड़ता है। अतः दोनों कुछ खा पीकर नाव पर सवार होकर ईरनाकुलम स्थान पर पहुंचे। वहां कोई रियास्त की सीमा पड़ती होगी और पता नहीं किस कारण पोलीस ने यह कह दिया कि ये दोनों बालक घर से भाग कर आए हैं। दूसरा बालक तो बहुत परेशान हो गया। परन्तु आप ने बुद्धिमता से काम लिया और कहने लगे, 'भाई' हमें क्यों रोकते हो, हमने तो गुरुवेयूर की ओर जाना है। हम तो विद्यार्थी हैं और वहीं पढ़ते हैं। यदि हम परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सके तो हम आप को दोषी ठहरायेंगे कि आपने हमारा बहुमूल्य समय नष्ट किया। क्योंकि आप को मालूम होना चाहिए कि हमारी परीक्षा निकट है और इसीलिए हमारे पास पुस्तकें भी हैं। बात तो पौलीस वालों को कठोर लगी परन्तु बालक के मुख से ऐसी बात सुनकर वे लोग बहुत कोमल हो गए। बालकों के पुस्तकें दिखा देने पर पुलीस वालों ने आगे जाने से रोकना उचित न समझ कर आज्ञा दे दी। तत्पश्चात् आप त्रिचूर से गुरुवेयूर पहुंच गए। बालकों की ऐसी लीला से हम बहुत प्रसन्न हो उठते हैं।

परन्तु यह बालक की बात नहीं है यह तो एक विशेष बालक के मुख से निकली हुई बुद्धिमानी की बात है। मैं तो आप की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करूंगा। बालकों का कहना सत्य भी था क्योंकि परमपिता के आगे आप परीक्षा देने ही तो जा रहे थे। मन्दिर में जब वह बालक जिसे आप अपना भाई मानते थे, बीमार पड़ा तो आपने जो कुछ भी आप के पास था उसे देकर घर के लिए विदा किया। विपत्ति पढ़ने पर ही तो मित्र की परीक्षा होती है। आप की ऐसी उदारता आज भी देखने को मिलती है बालक के लिए अपना कौन और पराया कौन। मालूम होता है कि उपरोक्त बालक आपके साथ की ही इच्छा से आपके साथ आया था और उसके पास आपने अपने मामा जी के पास अपना कुशल समाचार भी भेज दिया। उस समय नीलकण्ठ जी की आयु १२ या १३ वर्ष की ही थी। जब नीलकण्ठ जी घर से निकले थे तो इन्हों के मामा जी घर पर नहीं थे। जब उनको उस बालक से आपके बारे में पता लगा तो बहुत प्रसन्न होकर मामा जी आप के पास मन्दिर में पहुंचे और कहने लगे कि तुमने जो भगवान का आश्रय लिया है इससे हम बिल्कुल निश्चिन्त हैं और तुम्हारे ही कारण हमें भी भगवान के मन्दिर के दर्शन हो गए और नीलकण्ठ जी के रहने की वहीं व्यवस्था कर मामा जी वापिस लौट गए।

अब नीलकण्ठ जी मामा जी की ओर से बिल्कुल निश्चिन्त हो गए और शौच आदि से निवृत होकर सदा पूजा पाठ में लगे रहना इनका नियम सा बन गया। समय पर पूजा पाठ करना, मन्दिर को जाना यही आपका दैनिक कार्यक्रम था और काम भी क्या था सिवाय प्रभु भजन के। नीलकण्ठ जीकी ऐसी दिनचर्याया,पूजापाठ,भजन आदि

देखकर पुजारी लोग आपसे बहुत प्रेम करने लगे और आहार विहार में जो आप को पैसे देने पड़ते थे वह प्रधान पुजारी की आज्ञा से न देने पड़े और अब आहार आदि की व्यवस्था हो जाने के कारण आपने अपने आप को मुक्त समझा। सच है कि भगवान् के नाम पर रहता हुआ व्यक्ति आनन्द शून्य नहीं हो सकता मानसिक सुखके कारण आपका शरीर भी नीरोग रहने लगा। आपका मन भगवान् में ही था और भगवान के लिए हर पूजा पाठ आदि में आप उपस्थित रहते थे। नाम जपना, स्नान अभिषेक का जलपान करना और उसको शरीर पर लगाना, भगवान् के प्रसाद को बड़ी भक्ति से रखना यही भावना आपकी औषधि रूप थी। कभी २ नीलकण्ठ जी एकाग्र मन से किसी एकान्त स्थान (मन्दिरमें ही) जाकर अपने विचारों में मग्न रहते थे। वहां की पूजा पद्धति ऐसी थी कि एक नास्तिक भी इसे देखकर आस्तिक बन जाता था। इस में कोई सन्देह नहीं कि मन्दिर बहुत पुराना है परन्तु उसमें जो क्रियाएं होती हैं वे वास्तव में बहुत पवित्र और उच्चकोटि की होती हैं। ऊषा आरती एवं कीर्तन ऐसी क्रियाएं पहर २ में अनेकों प्रकार की अर्थात् विविध विधि से पूजा होती रहती है। भिन्न भिन्न समय में भिन्न भिन्न प्रकार के लोग वहां उस मन्दिर में आते हैं और पूजा पाठ का कार्य-क्रम भी बहुत साज वाज के साथ हुआ करता है। दक्षिण में जैसा मन्दिरों का महत्त्व है वैसा उत्तरी भारत में नहीं। मन्दिर के ऐसे वातावरण से आप बहुत प्रसन्न थे। भक्ति करने में आप पूर्णतया ध्रुव के समान थे और जब कभी भगवद् महिमा का मन्दिर में नृत्य होता था तो गौरांगभाव की तरह आपका मन भी प्रसन्नता से नाच उठता था। स्वामी जी के मुख से हमने सुना है कि यहां से ही उनका भक्ति

संचार आरम्भ होता है। दक्षिण भारत में यही एक मन्दिर है जो सबसे श्रेष्ठ और पवित्र माना जाता है। यहां अनेकों यात्री रोग से शान्ति प्राप्त करने के लिए अपने आप को निर्जल इत्यादि व्रत धारण कर आत्म समर्पण भी करते, मन्दिर के आस पास पड़े रहते हैं।

यह मन्दिर गुरु यानी वृहस्पति और वायु भगवान के नाम से गुरुवेयूर नाम से प्रसिद्ध हुआ है। प्राचीन कथा है कि गुरु वृहस्पति जी ने भगवान कृष्ण के कथनानुसार अपने शिष्य वायु की सहायता से द्वारिका के मन्दिर को समुद्र के हाथों से बचाया था और दोनों ने (बृहस्पति और वायु) उस मन्दिर की मूर्ति को गुरुवेयूर के स्थान पर शिवजी तथा पार्वती की आज्ञा से स्थापित किया। मन्दिर के सामने एक पवित्र झील भी है। जहां शंकर, पार्वती दैनिक जल क्रीड़ा करते थे। इसी लिए उस मन्दिर के आगे शिवजी का भी एक छोटा सा मन्दिर है। गुरुवेयूर मन्दिर में कितनी शक्ति थी उस के विषय में यह एक प्रसिद्ध घटना है।

एक भक्त अपने बाग से नारियल की भेंट भगवान के लिए (उसी मन्दिर में मूर्ति रूप स्थित भगवान के लिए) ला रहा था कि रास्ते में उसे एक चोर मिला। उस भक्त ने कहाकि नारियल के सिवा जो कुछ भी है वह मैं तुमको दे सकता हूं परन्तु नारियल नहीं। चोर ने कहा "नारियल में क्या सींग हैं जो तुम नहीं दोगे" चोर के यह कहने के साथ ही वह नारियल वैसा ही बन गया। चोर को बड़ा भय लगा और वह बिना कुछ लिए भाग खड़ा हुआ। वही नारियल मन्दिर में एक स्थान पर रखा हुआ है। मन्दिर की जय जयकार की ध्वनि आज भी उसी तरह दक्षिण भारत में गूंजती है। भगवान् की शक्ति से ही स्वामी जी का शरीर नीरोग हुआ था और

इन्हीं की कृपा से आप नवजीवन व्यतीत करने लगे थे। यह बड़ सौभाग्य की बात है कि स्वामी जी की कृपा से उस मन्दिर की एक फोटो वहां गुहा के आगे लटकाई हुई है। वह मूर्ति बहुत दिव्य तथा आकर्षक है।

इसके पश्चात् आप घर आ गए परन्तु घर आते ही आपको वही रोग हो गया और इसी प्रकार आप कई बार घर आए और कई बार मन्दिर में गए। आश्चर्य की बात है कि जब आप घर आते तो रोगों से घिर जाते और जब उस मन्दिर में जाते,रोगमुक्त हो जाते। यह देखकर आप का भक्ति भाव और भी दृढ़ हो गया। घर में आप को शान्ति न मिलती थी। अतः आप सोचते रहते थे कि संसार में क्या सत्य और कौन सी वस्तु स्थाई है। माता का प्रेम, सम्बन्धियों का प्रेम ये सब अस्थाई हैं। प्रत्येक वस्तु आप को व्यर्थ सी जान पड़ती थी। भगवद् प्रेम में सच्चा सुख हो सकता है लोगों में नहीं, यह बात आप जान गए थे। आप की बलवती इच्छा यही थी कि मन्दिर में ही रहूं। आजीवन क्यों न आप का तन मन मन्दिर का ही हो गया था। घर पर मन्दिर की याद आ जाते ही आप व्याकुल हो उठते थे। आप गाते भी थे तथा रोते भी थे। जो जिस से प्रेम करता है वह केवल उसी को ही चाहता है। आप के विषय में भी ऐसा ही था और इसी लिए आप मन्दिर की मूर्ति को ही अपना सर्वस्व समझते थे। उसी का ही चिन्तन करना आप का कर्तव्य बन गया था। आप प्रायः बालकों की तरह नहीं थे। आप तो ऐसे बालक थें जिस नें बचपन से ही सत्य के विचार से भगवान की ओर मुख कर लिया था। "ब्रह्मसत्य और जगत् मिथ्या" का परिचय आपने दे दिया और भलीभान्ति आप नें भगवान का रूप जान लिया। मन्दिर की सम्मिलित यह ध्वनि—

"त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वम् मम देव देव ॥"

आप जब यह सुनते थे तो इस का सच्चा मर्म आप अपने ऊपर ही अंकित करते थे। सत्य ही हमारे माता पिता, सत्य ही सार, सत्य के आश्रय से ही सब कुछ मिल जाता है तो दूसरों की आशा से क्या लाभ। सत्य की सत्ता ही से तो सब बोलते हैं। सूर्य तप रहा है, वायु वह रहा है। यह सब सत्य का ही प्रमाण तो है। इसी सत्य का आश्रय लेकर जड़, चेतन की सत्य रूप आत्मा को हम जान सकते हैं। जड़, चेतन सभी में आत्मा है जो सत्य से पहचानी जा सकती है। सत्य के महत्व को जानने के लिए आप ने मौखिक कार्य की अपेक्षा प्रयोगवादी कार्य को उचित समझा। इसी स्तुति को ही आप सर्वश्रेष्ठ मानते थे और इसी से आप ने अपने आप को ऊपर उठाया। माता पिता का आश्रय ही आप को चाहिये था, अतः भगवान् को ही आप ने अपना माता पिता समझा। देह के माता पिता न सही, सृष्टि के सत्य-स्वरूप भगवान् को ही सत्य में देखना चाहा और इसी कारण भगवान् ही आपके माता पिता थे। "ब्रह्मार्पणम् ब्रह्म" इत्यादि श्रुति की नाईं ब्रह्म में ही सर्वस्व तिलांजली दे दी, दुःखों को अपनाया और ध्रुव विश्वास से ध्रुव की भान्ति विश्वेश्वर की खोज में उसी उमर में आप घर से निकल पड़े।

हरिरेव परब्रह्म हरिरेव परांगतिः।
हरिरेव परामुक्तिः हरिरेव स्नातनम् ॥

अब भगवान् ही रहा एक भव-बन्धु और भगवान् को छोड़

कर है भी कौन ? इस दृश्य और अदृश्य में भी आप को यही ध्यान रहा कि संसार साररहित है तथा दो दिन का है। संसार की असारता तो हमें नित्यप्रति देखने को मिलती है तो फिर रोना किस चीज का। मृत्यु, जरा और व्याधि से कौन परित्राण पा सका। इसी प्रकार आप जान गए थे कि संसार में सब कुछ अस्थाई है। ऐसा जानते हुए भी जो मनुष्य ऐसी वृथा चीजों के पीछे भागता है, वह अपने आप को गढ़े में ही डालता है और उसे मूर्ख ही कहना उचित होगा। मनुष्य जन्म लेकर यदि कुछ ज्ञान प्राप्त न किया तो ऐसे मनुष्य जन्म को धिक्कार है क्योंकि बार बार मनुष्य जन्म तो मिलेगा नहीं। कर्म के फलरूप प्रारब्ध को लेकर चौरासी योनि के चक्कर में चलते रहना पड़ेगा, अगर मनुष्य जन्म का लाभ न उठाया तो वैराग्य विचार रूपी शस्त्र से अपने मोह का पर्दा काट दिया और नन्दनन्दन कृष्ण भगवान के सिवाय किसी को भी मानने से इन्कार कर दिया और अपने आप को व्यस्त समझ कर आप अधीर हो उठे तथा घर से बाहर आ गए—घर में भी कोई था नहीं, उस समय जो आप का पीछा करता (त्वमेव माता च पिता त्वमेव) तू ही 'एक और तेरी ही ओट', ऐसा सोचते हुए परिव्राजक बन गए। घूमते २ काफी दिन व्यतीत हो गए। आप के पास थोड़ा बहुत प्रयोजन का सामान भी था। सनातन परम्परा के सिद्धान्तों के अनुसार भगवद् कृपा का अपने प्रारब्ध पर विश्वास करते हुए ही आप घर से निकले थे।

योगक्षेमं वहाम्यहम्—

अर्थात् भगवान के प्रति श्रुति और कृपा के विश्वासी थे। अपने विचारों के अनुसार पहले कुछ दिन तक दक्षिण भारत में ही घूमते

रहे। और भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी को सहन करने में अपने आप को संयमी बना लिया। तत्पश्चात् विचरते हुए मद्रास में स्थित राम कृष्ण परमहंस मठ के स्वामी श्री निर्मलानन्द जी के पास पहुंच गए। इनके दर्शन करने के बाद धीरे २ आप ने अपना अभिप्राय भी बता दिया। स्वामी निर्मलानन्द (तुलसी महाराज) बड़े ज्ञानी महात्माओं में से एक थे। स्वामी निर्मलानन्द जी के श्रेष्ठ और तेजस्वी स्वभाव से जब आप प्रभावित हुए तो आप का स्वभाव भी वैसा ही बन गया। स्वामी निर्मलानन्द जी रामकृष्ण परमहंस के ही शिष्य थे। इस लेख में स्वामी निर्मलानन्द जी की जीवनी तो नहीं लिख सकते वैसे ये जन-गण-प्रिय थे। इन्हीं की कृपा से हमारे स्वामी जी कृतकृत्य हुए। दक्षिण भारत में इस महापुरुष (निर्मलानन्द) ने बहुत से मठ बनाए और राजकृष्ण मठ का बहुत प्रचार किया और जनता की सेवा की। सेवाकार्य में इनकी बहुत रुचि थी और इसी कारण ये कई आश्रमों के इनचार्ज भी थे। निर्मलानन्द जी तो मानों साक्षात् सतगुरु की मूर्ति थे जिस कारण हमारे महाराज अब भी इन की महिमा गाते हैं। तुलसी महाराज ने आपका आचार व्यवहार और कर्म कुशलता देखकर बहुत प्रसन्नता प्रकट की और साथ ही यह कह दिया कि ये बालक (स्वामी पुरषोत्तमानन्द) हिमालय में रह कर तपस्या करेगा और सिद्ध योगी बनेगा। 'सन्त की बात वृथा न जाए' आप सचमुच वही बन गए। उस समय तो आपने यह विचार भी नहीं किया था कि मुझे हिमालय जाना होगा। परन्तु अब जब हम आपके श्रीमुख अपने गुरु की उस बात को जो आप भूल चुके थे, सुनते हैं तो हम बहुत चकित होते हैं कि बात वैसी ही हो गई। तुलसी महाराज अपने नए शिष्य को देखते ही हृदय से चाहने लगे थे और तुरन्त ही

रहने की भी आज्ञा दे दी। विना परीक्षा लिए ही आपको उन्होंने अपनी शरण में ले लिया। इसी प्रकार शिष्य ने भी गुरु की परीक्षा न ली क्योंकि आप ने उनकी प्रशंसा सुन रखी थी और इसी लिए अन्तरात्मा से आपने उन्हें गुरु मान लिया। इसके वाद गुरु शिष्य का सम्बन्ध दृढ़ हो गया और दोनों ने कर्म रूप लहर में डूब कर अपने अपने काम को करना आरम्भ कर दिया। गुरु ने भी चन्द दिनों में ही योगमाया से अपने इस शिष्य को बहुत ज्ञानवान और शक्तिशाली बना दिया और आश्रम के कार्यों में निपुण करा कर (योगः कर्मसु कौशलम्) की युक्ति बता दी। थोड़े दिनों में ही इस जगत् और परजगत् के भेदाभेद (अर्थात् वाह्य और अन्तर का मर्म) अर्थात् अध्यात्मिक जगत् के छिपे रहस्य को भली भांति बता कर पक्का कर दिया। फल स्वरूप गुरु जी ने इस जगत् में रहते हुए आपको, न रहने के बराबर का ज्ञान करा दिया। स्वामी जी ने गुरु जी की तन मन से बहुत सेवा की, क्योंकि सेवा भाव आप में बहुत था और हमने सुना है कि १२ वर्ष तक आपने गुरु की शारीरिक सेवा करके पूरे (भक्तन) का परिचय दिया। गुरुभक्ति के प्रति आपकी इतनी श्रद्धा थी कि आप उनकी आज्ञा के विना एक कदम भी न उठाते थे। पहली यात्रा के उपरान्त आप तिखुला आश्रम में गुरु की आज्ञा से आए थे वह तिखुला आश्रम आप के हाथ का बनाया हुआ था और वहां पहुंच कर आपने ब्रह्मचारी लोगों को शिक्षा दी। आश्रम जो आपने बड़ी कठिनता से बनाया था। आप ने उस में रहने का विचार तक भी न किया। ऐसी बात आप के कभी मन में भी नहीं आई कि यह आश्रम मैंने बनाया है इत्यादि। जब आपके गुरु भाई ने जिसे आप अपने आश्रम का इनचार्ज बनाकर गए थे, आप के आने पर कोई हर्ष प्रकट न किया

तो आप का वैराग्य भाव और भी दृढ़ हो गया और तपस्या हेतु आप उत्तराखण्ड हिमालय की ओर चल पड़े। स्वामी जी ने किसी स्वार्थ के लिए गुरु की सेवा नहीं की, नहीं तो आप कई आश्रम के प्रबन्ध-कर्ता थे ही, और बहुत कुछ कर सकते थे परन्तु आपका मन तो परमार्थ की ओर झुका हुआ था। आप ने किसी वस्तु का मोह नहीं किया। निष्काम भावना से सेवा करने के कारण आप नहीं जानते थे कि कल मेरे ऊपर क्या विपत्ति होगी। इसी प्रकार सेवाभाव और अपनी सामर्थ्य के अनुसार हरिपद के स्थान पर एक ऐसा मठ बनाया जो कलकत्ता बेलूर मठ के सदृश ही है। सदा सादे रहने के कारण गुरु जी आपको (भक्तन) कहा करते थे। आप का स्वभाव भी बहुत कोमल था। जब कभी कोई भक्त गुरु की सेवा करता तो आप उस भक्त की भी सेवा करने से न चूकते थे क्योंकि आपको विश्वास था गुरु की सेवा करने वाला व्यक्ति बहुत भाग्यवान है, अतः इसकी भी सेवा करनी चाहिए। हमसे ऊंचा कोई भी नहीं है, ऐसा आप कभी न सोचते थे। अहो, कैसे उच्च विचार हैं, और कैसे महानुभाव है, यही भक्ति का उच्च आदर्श है।

एक बार जब गुरु जी ने आपको बुलाया। और पूछने पर पता चला कि आप एक नौकर का वस्त्र धो रहे थे तो गुरु जी ने कहा कि ये बात उचित नहीं। दूसरे महात्मा लोग भी इस बात पर हंस पड़े और कहने लगे कि ये काम आपका नहीं है, ये काम नौकरों का है। मैं ऐसी भावना को भक्ति न कह कर उच्च आदर्श कहूंगा। ऐसा करने से ही भगवान की कृपा हो सकती है। भगवान को सर्वस्व अर्पण करना और सर्वत्र भगवान को देखना, ये भक्तिमार्ग के श्रेष्ठ लक्ष्य हैं। ऐसे

भक्तों के लिए भोलानाथ भी दूर नहीं हो सकता है। न ही ऐसे भक्तों और ज्ञानियों में अन्तर हो सकता है। तुलसी महाराज (भक्तन) को जितना प्यार करते थे वह मेरा नीरस दिल नहीं जान सकता। उन्होंने आपको कई बार गोद में बिठाकर भी प्यार किया था। यही सत्य भावना का ही फल है। भावना ही श्रेष्ठ पूजा है। आप ने कहा है कि :—

"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी"

प्रत्येक क्षेत्र में भावना पवित्र होनी चाहिये। भावना पवित्र होने से मन भी पवित्र हो जाता है अतः यह सर्वदा सन्देह रहित है कि भावना ही श्रेष्ठ पूजा है। नहीं तो हम कैसे बता सकते हैं कि ईश्वर की पूजा और भी है, क्योंकि जब हम एक दूसरे के भावों से ही अनभिज्ञ हैं तो यह जानना कि किस की कैसी भावना है, कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव भी है। अनेकानेक विधियों में से अपने भावों को पवित्र रखना भी एक श्रेष्ठ पूजा है। मैं ने जो सुना अथवा स्वामी जी के मनोगत भावों को देखकर जो कुछ सीखा है उस के विषय में यह कह सकता हूं कि अधुना ऐसे साधु बहुत कम मिलेंगे जो गुरु की प्रत्येक बात को मान कर पूरे निश्चय से उन की सेवा करते रहें। कर्मों के फलस्वरूप आप कर्मों से अतीत हो गए। इस के उपरान्त अपने में ज्ञान की झलक देखते ही आप के मन में संन्यास की इच्छा हुई। स्वामी निर्मलानन्द जीने वेलूर मठ के नियम के अनुसार आप को शिक्षा ही दी, दीक्षा नहीं। इधर स्वामी जी वेलूर मठ के प्रेजीडैन्ट ब्रह्मानन्द जी की ही बाट देख रहे थे क्योंकि वही दीक्षा दे सकते थे। जिस समय ब्रह्मानन्द जी मद्रास आए तो ऐसे शुभ अवसर पर इन ने पुण्य

हाथों से मन्त्र दीक्षा ली। ब्रह्मानन्द जी एक बार फिर जब दक्षिण यात्रा पर आए तो निर्मलानन्द जी की यही इच्छा थी कि नीलकण्ठ को इसी समय संन्यास दे दिया जाए। परन्तु नीलकण्ठ अपने गुरु जी की आज्ञा से ही कहीं बाहर गये हुए थे सन्देश भेजने पर भी आप समय पर न आ सके और कुछ समय के लिये संन्यास दीक्षा से वंचित रह गये। कुछ काल के बाद आप अपने गुरु जी की आज्ञा से वेलूर मठ में आए और स्वामी शिवानन्द जी महाराज (महापुरुष महाराज) से सन्यास लिया। क्योंकि उस समय ब्रह्मानन्द जी (1st. President) का देहावसान हो चुका था। वह संन्यास कार्तिक पूर्णिमा के शुभ दिन पर ही हुआ था। शिवानन्द (2nd President) जी ने आप को अपने आश्रम में ही चन्द दिन बिताने पर विवश किया था परन्तु आप बहुत जल्दी ही उन से बिदा लेकर काशी होते हुए हरिद्वार आ पहुंचे। कर्मों के साथ काया भी बदल गई। संन्यास आश्रम के अनुसार ही आप का नाम हुआ था **'स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी।'** अब आप पूर्ण संन्यासी बन चुके थे। मानवता से देवत्व को प्राप्त किया। गुरुजनों की असीम कृपा के कारण भूलोक में ही स्वर्ग के अधिवासी बन गये अर्थात् स्वामी-पद के अधिकार को पाकर जगत् के भी स्वामी हो गये। स्वामी जी जिस समय वेलूर मठ में आये तो वहां आज की अपेक्षा असंख्य लोगों का समागम था और मठ भी आज की अपेक्षा बहुत उन्नत था। मठ के उन्नत होने का श्रेय स्वामी विवेकानन्द जी को ही है क्योंकि उन के कर्मयोग का सूत्रपात ही था। स्वामी जी भी कर्मों की प्रधानता को देखकर बहुत प्रसन्न थे। जब आप हरिद्वार की ओर आ रहे थे तो रास्ते में भागवतानन्द

जी के आश्रम में भी ठहरे थे, वहां बुखार हो जाने के कारण हस्पतालों में जाना पड़ा, और थोड़ा सा आराम आ जाने के साथ ही आप कनखल में पहुंचे वहां से कहीं और जाने के लिये मथुरा में आए। परन्तु दैव इच्छा ऐसी थी कि वहां आप को फिर बुखार हो गया और हस्पताल का आश्रय लेना पड़ा। आप की हालत यहां तक बिगड़ चुकी थी कि जीने का कोई भरोसा न था। मगर आप तो आत्मज्ञान से सदैव अमर रहने के लिये उत्पन्न हुए थे। अनेकों के जीवन के कार्यक्रम को बदलने के लिये और उन्हें ठीक रास्ते पर लाने के लिये ही तो आप का जन्म हुआ था। दैव इच्छा प्रवल थी। और आप को धीरे २ आराम आने लगा और तुरन्त हरिद्वार के ब्रह्मकुण्ड घाट पर आसन जमा कर बैठ गये। हरिद्वार तो सचमुच हरि का ही द्वार है क्योंकि यहां के प्रकृति दृश्य बहुत सुन्दर हैं। यहां से ही हिमालय आरम्भ होता है जिस के पदादेश से गङ्गा आती है और इस के इर्द गिर्द बहुत मठ, मन्दिर हैं। अतः उन्हों ने हरिद्वार की शोभा को चार चांद लगा दिये हैं। यह हिन्दुओं का एक पुरी धाम है। यहां की महत्ता इतनी है कि यहां स्नान करने से सात जन्मों के पाप कट जाते हैं। हरिद्वार पर ही ब्रह्म ऋषियों ने भगवान के दर्शनों के लिये यज्ञ किया था जिस का कारण इसे ब्रह्मकुण्ड घाट कहते हैं। मैत्री और विदुर का संवाद यहीं हुआ था तथा नारद जी ने भी सप्तऋषियों से यहीं भगवद् कथा सुनी थी। दक्ष प्रजापति का वास स्थान भी यहीं कनखल में है। हरिद्वार के उत्तर और दक्षिण में जो चण्डीदेवी तथा मनसादेवी के मन्दिर हैं, वे बड़े दिव्य दिखाई देते हैं। यहां का महत्त्व स्वामी जी भूले नहीं थे, इसी लिये आप ने यहीं रहने का विचार किया। उस समय का क्या कहना ? विशेषकर जब त्रिगामी गङ्गा

अस्ताचल सूर्य के साथ कल-कल शब्द करती हुई दक्षिणीय मुख होकर प्रस्थान कर रही थी और उधर दया, दान, दमन आदि शास्त्रों की व्याख्या हो रही थी महात्मा से यात्रियों के प्रति क्या कहना तीर्थ घाट की महिमा का — परमात्मा क्या, प्रेम ही तो है, सब कुछ। सब में प्रेम और प्रेम ही से परमात्मा को देख लिया अर्थात् प्रेममय होकर जल्दी ही आप ने प्रेमरूप भगवान को जैसे प्राप्त कर लिया। स्वामी जी के भाव इस समय ऐसे थे कि एक गृहत्यागी संन्यासी ही उस भाव को जान सकता है। उस समय आप के अन्दर ऐसी आवाज़ आई जिस के अनुसार आप ने निश्चय किया कि वैराग्य के आधार पर रह कर भगवान को तुष्ट करूंगा। गङ्गा की धाराओं को एक टक देखते हुए आप अपने विचारों में मग्न रहे। तत्कालीन बाह्य और आन्तरिक अवस्थाओं से आप का मन ऐसा शान्त था मानो शान्तिमय भगवान का चिन्तन कर रहे थे। मानो उसी की गोद में बैठे हुए हों परन्तु यह शान्ति भी चिरस्थायी न रह सकी क्योंकि दूसरे ही क्षण में ऐसा विचार आया, वा मन में स्पन्दन आया कि 'कैसे देखूं उस प्रभु को इन चरम चक्षु से ?' बादलों की नाईं आप की शीतलता चली गई और ऊष्णता आ गई। क्या करे जीव, जीव भाव तो रहता ही है क्या करूं, कहां जाऊं वा आप को कैसे पाऊं ? ऐसी भावना आप की हो गई और कहने लग पड़े कि हे प्रभु, "अपना कर ले अपना कर ले" ब्रह्मभूता, जगततारिणी माता गङ्गा की यह साक्षात् महिमा थी जिस से आप ने ऐसे भाव प्राप्त किये। तब से लेकर स्वामी जी गङ्गा तट पर ही रहे और आज भी उस क्रियामयी माता की गोद में रह रहे हैं। तत्पश्चात् आप इस नूतन भाव को लेकर कनखल के ऋषिकेश में आ गए। स्वतन्त्रता पूर्वक रह कर तथा भिक्षावृत्ति

पर ही निर्भर होकर आप रहने लगे। इस समय आप राजयोग का अभ्यास करते थें और साथ ही हठयोग का भी। हठयोग के आसन वा प्राणायास आज भी आप से छोड़े नहीं गए। महात्मा लोगों के वीच में रहकर आप शास्त्रार्थ में भी कूद पड़ते थे। आपका नारा यही चलता था कि 'ब्रह्म सत्यं फिर जगत् मिथ्या कैसे' वा वौद्धरूप जागृति से अद्वैत ज्ञान ही कैसे। आपका मनोगत भाव यही था कि अपरोक्ष का ज्ञान हो जाए। उस समय ऋषिकेश वर्तमान की तरह न था। वहां अच्छे २ महात्माओं की कुटियों के सिवा कुछ न था। न वहां कोई बाज़ार और न विजली। कभी २ वाणप्रस्थी लोगों का ही आगमन होता था, गुरुदेव की तरह महात्माओं के सत्संग की खोज में। स्वामी जी वहां ६ वर्ष तक रहे। और इस के उपरान्त ब्रह्म पुरी। रामगुहा की ओर चल पड़े थे। ऋषिकेश में आप के रहने की व्यवस्था भी हो चुकी थी परन्तु वहां का अन्न खा कर ही अपने को उन्नत करना आप अच्छा न समझते थे। जंगलों के फूल, मूल वा पत्ते खा कर निर्वाह करना आपने उचित समझा। पहले ही आप वहुत संयमी थे अतः ऐसा रहने पर भी आप भयभीत न हुए। त्याग-भावना के कारण ऐसी वातों का आश्रय लेकर आप आगे चल पड़े। इस समय आप के पास न कोई वस्त्र था न कोई सामग्री। आप अवधूत् दशा में ही थे। 'करतलभिक्षा तरुतलवासः' ऐसी जिस की वृति है उसको न किसी वस्तु की चिन्ता होती है न ही उस के लिए कोई वस्तु दुर्लभ है। स्वामी जी अपनी चिन्ता में ही रहे अर्थात अपने संकल्प वा विकल्प को भी त्याग दिया। "Renunciation itself to Moksha"

चाह गई चिन्ता मिटी मनुवा बेपरवाह।
जिन को कछु न चाहिये तेई शाहनशाह ॥

अर्थात् त्याग ही मुक्ति है। जिन्हों ने त्याग किया उन्हों ने ही प्रभुपद पाया। भोग करने से मुक्ति कठिन है। वासना की प्राप्ति तो अतीव सहज है जैसे मन की एक कल्पना के बाद दूसरी आ जाए। भोग से मनुष्य असफल ही होगा परन्तु त्याग से सर्वदा सफल होता है। भोग दुःख रूप है और त्याग सुखरूप है। इसी लिए आप ऐसे विचारों से पूर्ण त्यागी ही बने रहे। उस त्याग के फलस्वरूप आप की अवस्था ऐसी हो गई कि कार्य-कारण, द्रष्टा-दृष्ट, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय अर्थात् मैं और तू की भिन्नता आप के लिये एक हो गई। ऐसी अवस्था में आ जाना वा कर्म-योगी से अवधूत महात्मा में आ जाना आप की सच्ची भक्ति का ही फल था। स्वामी जी कठोर तपस्या में दृढ़ रहे और तपस्या के फल से अनात्मा का ज्ञान भी दूर कर दिया। हां, मैं तो यही कहूंगा कि आत्मज्ञान आप ने यहीं से प्राप्त किया था। यह बड़ी हृदयविदारक तपस्या थी। स्वामी जी रामतीर्थ गुहा में रामतीर्थ की भान्ति पड़े रहे। बड़ा आश्चर्य है कि ऐसी अवस्था में आप इस एकान्त स्थान में जो जन-संचार शून्य था कैसे रह सके। यह आत्म ज्ञान की ही शक्ति थी, जिस के बल से आप ऐसी परिस्थिति में भी अपनी वृत्ति में लगे रहे। गीता में कहा है कि:—

न ही ज्ञानेन सादृश्यं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेन आत्मनि विन्दति ॥

अर्थात् ऐसी ज्ञानरूप सिद्धि द्वारा ही अपने को अविचलित कर रखा। निर्वाण-पद भी इसी अवस्था का नाम है। संग दोष की छाया भी न थी और मन में शान्ति ही शान्ति थी। कपड़े का एक टुकड़ा, भोजनादि के लिये लोहे का पात्र, तथा शौचादि के लिए टीन का डिब्बा ही आप की सम्पत्ति थी। मैं तो ऐसी तपस्या पर बलिहारी जाता हूं। आनन्द भी तो ऐसी ही तपस्या में मिलता है। न मालूम इन का आहार क्या था वा उस का प्रबन्ध क्या था? सुनने में आता है कि स्वामी जी कभी २ ऋषिकेश में भी आया करते थे। एक बार वहां से क्षेत्र के कर्मचारी का अच्छा व्यवहार न देखकर आप बड़े दुःखी हुए। महात्मा के ऊपर छोटी दृष्टि फैलाना छोटे अथवा नीच का काम है। स्वामी जी उस के बाद उस क्षेत्र में आये ही नहीं। ऐसे कर्मचारी लोगों का दिल छोटा ही होता है। मालूम होता है कि ये लोग चीजों को अपनी समझ कर बड़ी हिचकचाहट के साथ दान देते हैं। इस के बाद स्वामी जी उसी जंगल में येन केन प्रकारेण रहने लगे और अपने संकल्प को पूरा करने लगे। जैसी कठोर तपस्या आप ने की वह अपूर्व स्मरणीय है। शायद ऐसी स्थिति के विषय में कहा गया है कि :—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥

आपकी अब ऐसी अवस्था थी जिस अवस्था में किसी चीज़ को प्राप्त करने की इच्छा नहीं रहती। आप पूर्णतः निःस्पृह हो चुके थे। रामतीर्थ गुहा गंगा जी के किनारे पत्थरों की चट्टान के नीचे बनी हुई है। यह

गुहा गंगा इतनी समीपवर्ती है कि वर्षा के समय गंगा जी की गोद में चली जाती है। ये स्थान बड़े विचित्र हैं। गंगा जी को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार कोई खूनी व्यक्ति किसी को मार कर भाग रहा हो। उसी प्रकार गंगा भी दो पहाड़ियों के बीच में से बड़े प्रवल बेग के साथ भागती हुई दिखाई पड़ती है। उभय दिशाओं में पर्वत हैं जो घने जगंलों से आच्छादित हैं। इन जंगलों के कारण प्रकाश लुप्त हो गया है। चारों ओर अन्धेरा ही अन्धेरा है। क्या उस ब्रह्मपुरी (वही गुहा का नाम) के पास यम पुरी भी होगी। यहां शीत ऋतु ही अधिक रहती है। नाना प्रकार के जीव जन्तुओं का रहने का स्थान है और दिन के समय भी ये जीव जन्तु बाहर घूमते रहते हैं। जीव जन्तुओं का प्रसंग आरम्भ करते हुए मुझे एक बात याद आई—कि एक समय यही अवधूत बाबा (स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी) श्रीरामकृष्ण परमहंस का जन्म उत्सव इसी क्षेत्र में मनाना चाहते थे। उस समय आपका पैसे से कोई सम्बन्ध भी न था क्योंकि ऐसे ही कहीं से व्यवस्था हो जाती थी। आपका वह पवित्र संकल्प थोड़े दिनों में ही पूरा हो गया अर्थात् पैसे की व्यवस्था हो गई और आप ऋषिकेश के लिए चल दिए। वहां जाकर तुलसी मठ के महात्मा को सब बात बता कर और व्यवस्था आदि के लिए उनको कह दिया। और उत्सव की चीजें भी पहुंचाने को कह दिया अनेकों महात्माओं को निमन्त्रण दे दिए गए जिनमें (Divine life Society) के स्वामी शिवानन्द जी उत्तर काशी के प्रसिद्ध महात्मा श्री तपोवन जी, और तथा कथित पूज्य महात्मा लोग भी सम्मिलित थे। उत्सव के दिन सब लोग आ पहुंचे और उन लोगों में से एक के पास श्री परमहंस जी की फोटो भी थी जिसे लाने के लिए स्वामी

जी कह आए थे। महात्मा लोगों के आगमन से आप बहुत प्रसन्न हुए और बड़ी प्रसन्नता से उन लोगों का स्वागत किया। धीरे २ सब कार्य आरम्भ होने लगा। अब भंडार में क्या २ बनेगा इस पर विचार होने लगा। जंगलों में प्रत्येक ऋतु में पहाड़ पर आने वाले चरवाहों से स्वामी जी ने दूध का प्रबन्ध कर लिया था अतः खीर की व्यवस्था हो गई। खीर खाने के लिए तो चरवाहों का ही वर्तन विद्यमान था परन्तु सब्जी ख़ाने के लिए वर्तन न जुटाया जा सका। सूखी सब्जी थी अतः पत्थरों पर ही रख दी गई। पेड़ों के बड़े २ पत्तों पर ही खीर परोस दी गई। सभी बातें स्वाभाविक नियम पर ही थीं। पत्तों पर खीर अच्छी प्रकार खाई न जा सकती थी फिर भी महात्मा लोग तो प्रकृति के पुजारी होते हैं अतः उन्हों ने बड़े आनन्द से भोजन किया। कीर्तन समाप्ति के पश्चात्, गङ्गा जी को भेंट दी उस के बाद महात्मा लोगों ने अपना भोज समाप्त किया। विश्राम करने के बाद सब लोग विदा होने लगे। स्वामी जी ने सब से क्षमा याचना की और प्रेमपूर्वक साष्टांग प्रणाम किया। स्वामी जी प्रेम में विभोर थे, कोई चेतना नहीं थी और वैसे ही मिट्टी में पड़े रहे। काफी समय व्यतीत हो जाने के बाद महात्माओं ने स्वामी जी को ऊपर उठाया और अत्यधिक प्रेम दिखाकर विदा ली। उस के बाद जब स्वामी जी ने उन महात्माओं को भी जाने का निश्चय करते देखा जिन्हों ने सभी प्रकार का प्रबन्ध अपने ऊपर लिया था और जो विशेष रूप से आप से परिचित थे, तो उन्हों से कहा, "आप भी जा रहे हो ? क्यों नहीं एक दो दिन और ठहर जाते" उन्हों ने उत्तर दिया "ये तो बहुत भयानक स्थान है जहां शेर और चीते रहते हैं। वहां हम कैसे रह सकते हैं। हमें तो आश्चर्य है कि आप यहां कैसे

रहते हैं ?" ये घटना उसी महात्मा जी ने एक बार मुझ से कही थी। मैं भी बहुत हैरान था कि स्वामी जी वहां भयानक जंगलों में कैसे रह पाए। वशिष्ठ गुहा भी वैसा ही भयानक स्थान है जहां जानवरों के साथ ही स्वामी जी ने बहुत समय व्यतीत किया। इस में कोई भय की बात न थी। भय से भावना में परिवर्तन हो जाता है जैसे मन से काया में। भयावह स्थान में रहना आत्मा उन्नति का ही सहारा है। जहां सत्य, अहिंसा और प्रेम विद्यमान है वहां असत्य, हिंसा और वैरभाव टिक नहीं पाते। इसी प्रकार जहां दया वहां संघर्ष नहीं है। इस के पश्चात् स्वामी जी ने यहां रहना ठीक नहीं समझा। एक कारण तो यह था कि हर वर्ष गङ्गा के कारण स्थान परिवर्तन करना पड़ता था परन्तु विशेष कारण तो यह था कि अपनी अवस्था का ध्यान करते हुए आप ने अपने प्रोग्राम को बदलना चाहा। कर्म और उपासना का कोई अंग बाकी न था जिस के अनुसार इसी अवस्था में रहना हो। ज्ञान के पश्चात् मुक्त अवस्था हो जाना स्वाभाविक है। ज्ञान ही मुक्ति है। यही सहज अवस्था है। अब स्वामी जी पूर्व अभ्यास के वशतः कुछ २ शुभ कर्मों को लेकर सहज अवस्था में रहने की इच्छा करने लगे कि "क्या किया जाए" आश्चर्य की बात है कि उस समय उसी गुहा में देववाणी हुई जिस का मतलब 'वशिष्ठ गुहा' का था। आप इस गुहा की बात याद करने लगे कि गुहा कैसी है और उसी समय एक सज्जन द्वारा वर्णन की गई इस गुहा के बारे में आप ने चिन्तन किया। ऋषिकेश में जाकर एक ब्रह्मचारी को साथ ले कर बशिष्ठ गुहा के अनुसन्धान करने हेतु चल पड़े उस समय मोटरें व सड़कें नहीं थीं। न कोई ऐसा सीधा रास्ता था। गङ्गा ज़ी के तट से ही रास्ता बन पड़ा। जंगलों में विचरते २ तीन दिन व्यतीत हो

गए जहां आज एक ही घंटा लगता है। महात्मा लोग प्रत्येक परिस्थिति में अपने आप को मुक्त रखते हैं। इन लोगों को किसी प्रकार की चिन्ता भी तो नहीं थी। भरोसा तो उसी का है जिस की आशा की जाए। आप भगवान् के हो चुके थे और भगवान् आप के। निर्भय के साथ आप मन्दगति से चलते ही रहे और आखिरकार गङ्गा जी को पार करके वशिष्ठ गुहा में प्रविष्ट हुए। जिस रास्ते से आप आए थे वह इतना तंग तथा संकटमय था कि ज़रा सी भी असावधानी से प्राणों पर संकट पड़ जाता। स्वामी जी के श्रीमुख से जो हम ने सुना है उस का वर्णन नहीं किया जा सकता। वहां पहुंच कर आप बड़े प्रसन्न हुए। ऐसे आनन्दित हो गए मानो किसी वस्तु को पा लिया हो। वहां पहुंच कर मार्ग की सब तकलीफ भूल गए। कुछ काल तक अपने विचारों में मग्न रहे। अनेकों विचार आए और चले गए। आप ने वहीं रहने का दृढ़ निश्चय कर लिया परन्तु एक आश्चर्य की बात है कि एक सेठ कुछ सामान लिए हुए एक नौकर के साथ चन्द दिन बिताने के लिए वहां आए। स्वामी जी के आगमन से सेठ प्रसन्न दिखाई न देता था, न ही किसी प्रकार का सत्कार किया और न ही बातचीत की। स्वामी जी स्वयं विचारवान थे और किसी दिशा में जाने की सोची। परन्तु रात्रि के समय जाया भी कहां जाए। स्वामी जी देववाणी पर विश्वास रखते हुए भ्रान्ति में पड़ गए। भगवद् इच्छा थी, कि सेठ जी के नौकर का दिल सेठ जी की अपेक्षा बहुत अच्छा था। उस ने स्वामी जी की सेवा की और जाने से रोक लिया। दूसरे दिन प्रातः स्वामी जी ने उस ब्रह्मचारी को ऋषिकेश भेज दिया और आप निकटवर्ती पर्वत पर चल पड़े। चलते २ आप ऐसे स्थानों पर जा पहुंचे जहां मनुष्यों की छाया भी न जा सकती थी। और अचानक एक पहाड़ी

मनुष्य के साथ आप की भेंट हो गई। वह स्वामी जी को वहां देखकर आश्चर्य-चकित रह गया। और वहां के भयानक स्थानों का परिचय देकर स्वामी जी को समझा बुझा कर अपने घर में ले गया। स्वामी जी को अपने शरीर पर कोई महत्त्व नहीं था और न आत्मारूप को छोड़ कर कुछ जानते ही थे।

जाको राखे साईयां मार न सके कोय।
बाल न बांका करि सके जो जग बैरी होय॥

थोड़े दिनों के पश्चात् गुहा के समीप भींगनी नामक स्थान पर जो अब बंगला है वहां आकर आप रहने लगे। वह बंगला वर्तमान समय में यहां शिवजी का मन्दिर है पहले एक लिंग मात्र ही था मिट्टी के गब्बरों के नीचे। पहाड़ी लोग किसी शुभ अवसर पर वहां जल अर्पण करके चले जाया करते थे। पता नहीं, स्वामी जी के मन में क्यों फिर वहीं (उसी गुहा में) आने की इच्छा हुई। आप वहां आए तो देखा कि न वहां सेठ और न कोई सामान। अब अपने देववाणी के विषय में सोचकर उसे ठीक ही जाना और वहीं जम कर रहने लगे। तपस्या के स्थान पर भोग की सामग्री कैसे टिक सकती है। स्वामी जी ने दीर्घ श्वास लिया और सुख पूर्वक विशाल गुहा के आगे लेट गए। निगूढ़ जगंलों के अन्दर गुहा स्थान बड़े भयानक हैं। मनुष्यों का आगमन जहां नहीं, वे स्थान साधु लोगों को प्रिय हैं। गुहा के निकट ही एक श्मशान घाट है। संन्यासी लोग ऐसे स्थानों को अपने अनुकुल जानकर प्रसन्नता प्रकट करते हैं। आप निःसंग में निर्जन का आनन्द ले रहे थे। शान्ति शान्ति ही आप की अन्तर ध्वनि थी। अब भी

जब हम वहां जाते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि वही ध्वनि गूंज रही हो। अहो, कैसी शान्ति की ध्वनि है यह जो अब भी उसी प्रकार जीती जागती है। हम ऐसा कह सकते हैं कि कुंडलीनि अपनी विचार धारा के ऊपर ही खुल जाती है। प्रकृति के साथ विचार मिला कर आप भविष्य के कार्यक्रम के रंगमंच पर अवतरित हो गए और ऐसी भावना के साथ तपस्या करते हुए लगभग ३५ वर्ष व्यतीत कर दिए। धन्य है ऐसे जीवनों को जो ऋषियों के आदर्शों को अपना जीवन मान लेते हैं स्वामी जी गुरु स्थान को छोड़कर अज्ञात अवस्था में ही रहे। उपासना और ज्ञान में रहकर पूर्ण ज्ञानी बन गए। आत्मज्ञान के स्वरूप को कौन जान सकता है। क्रियमान वा दृश्यमान जगत जो दिखाई देते हैं वे भी निष्क्रिय आत्मा का ही प्रतीक हैं। दूसरी बात आत्मा का पूर्णज्ञान, अद्वैत यानी अपरोक्ष के ही ज्ञान से ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का जो तत्व है उस का सत्व एक आत्मा ही है। क्रिय वा निष्क्रिय का महत्व दृश्य वा अदृश्य का ज्ञान आपको यहीं मिला। इसी ज्ञान से काम, क्रोध आदि को तथा इन्द्रियों को वश में करने का कौशल क्षण भर में ही आपने न जाने कैसे सीख लिया। हम भी देखते हैं कि इसी ज्ञान के आधार पर व्यवहार में रहते हुए भी आप अपने आप को दूर ही रखते हैं। गीता में लिखा है कि :—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः ॥

गुहा में आने से पूर्व उत्तर काशी होते हुए आपने सारे उत्तर-खण्ड की यात्रा की थी। साथ ही कश्मीर तथा गोकरन की भी यात्रा

की थी। इस लेख में सब बातों का लिखना उपयुक्त है इन यात्राओं में आप को सुख की अपेक्षा अत्यधिक दुःख ही उठाना पड़ा था अतः दुःख यहां वर्णन ही कैसे होगा। उत्तर काशी और टेहरी के बीच की यात्रा पर आपको वायु का रोग हो गया। परन्तु आराम की व्यवस्था का होना कठिन था। पहले भी आपको यह रोग कई बार हो चुका था जिस कारण आप बहुत परेशान हुए और निरुपाय होकर एकदम गंगा जी में कूद पड़े। हा भाग्य! एक विरक्त साधु दुःखों से बचने के लिए करे भी क्या। तभी आपके मन में विचार आया कि ऐसी आत्महत्या नहीं और न ही इस से दुःखों की निवृत्ति होगी, ऐसा सोचते हुए आप तैरने लग पड़े और बाहर आ गए। महात्मा लोगों के जीवन में ऐसा होता ही है। कारण, मान, अपमान, सुख दुःख के बीच में ये लोग गुजरते हैं। मान और अपमान शरीर की दृष्टि से होता है आत्मा की दृष्टि से ही नहीं। अतः उनकी ऐसी क्रियाओं पर हंसना नहीं चाहिए। शरीर के विषय में चिन्ता न करते हुए ये लोग सब काम कर लेते हैं। अतः इन लोगों के स्वभाव में त्रुटि निकालना मानों अपने आप में त्रुटि निकालना है। इसके बाद आप एक गांव में आए। वहां के लोगों ने आपका बहुत स्वागत किया। अतः कुछ दिनों के लिए आप वहीं रहने लगे। सर्वांग व्यवस्था कैसे हो सकती थी क्योंकि वह तो एक गांव था। अतः भोजन के अपथ्य से आपको फिर बुखार हो गया। खाने को गांव का मठा ही मिलता था, ऐसा मैंने स्वामी जी से सुना है। वह खाते २ पेट फूल गया और आप ने वह गांव छोड़कर टेहरी के उपवन में रहना आरम्भ कर दिया। आप ने कुछ लकड़ियां इकट्ठी कीं और आग जला कर सो गए। शरीर के दुःखों ने आप के शरीर को ज्ञान करा दिया। जब दुःख आते हैं और शरीर में पीड़ा होने लगती

है तो फिर कौन कहता है कि मैं शरीर हूं अथवा यह शरीर मेरा है। उस समय वह शरीर भी शत्रु स्वरूप हो जाता है। उस शरीर से छुटकारा पाना सभी चाहते हैं। साथ में यह बात भी है कि ज्ञानी लोग शरीर को न देखकर आत्मा को देखते हैं। आत्मा का साक्षी तो मैं हूं। एतादृश ही आत्मा में ऐसा ज्ञान होने से मानो शरीर एक लकड़ी जैसा ही प्रतीत होगा। इस आत्मज्ञानी (स्वामी जी) ने अपने को अलग रखकर शरीर रूपी लकड़ी को लकड़ी में ही मिला दिया था। आग पूर्णरूप से तीव्र हो उठी मानो स्वामी जी का अन्तिम समय आगया।

श्री हरि हरि हरि—— यही तो मनुष्य का अन्तिम परिचय है और यही तो माया की अन्तिम लीला है। यहीं तक ही भाई वन्धुओं का सम्बन्ध है। यह बात सत्य है ना ? सच कहो, सच कहो, राम नाम सत्य है, राम नाम सत्य है। हे भगवन् ! ऐसा कहने वाला कौन होगा, एक जन-विहीन जंगलों में, धन विहीन फकीरों का। अर्थात् यह दशा देखने को भी कोई न था सिवाय स्वामी जी की अश्रुवारि के। परमात्मा सर्वत्र और साक्षी रूप है। परमात्मा ने उन के प्राणत्याग के निश्चय को जान लिया और स्वामी जी के हृदय से आवाज आई कि 'आत्महत्या पाप है। शरीर के नाश होने से आत्मा का नाश कहां।' वास्तविक मृत्यु आत्म ज्ञान से ही हुआ करती है। **ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।** ज्ञान होने से पहले की मृत्यु तो मुक्ति नहीं कही जा सकती। क्योंकि बार बार जन्म लेना पड़ता है अतः ऐसी मृत्यु अपमृत्यु ही कही जाएगी। आग की प्रवलता से स्वामी जी ने अपने मन को भी प्रबल किया और यह सोचकर कि ऐसे अपने आप

को जला देना मूर्खों का काम है, आप वहां से उठ खड़े हुए। बात तो बड़े दुःख की है परन्तु हंसी भी आती है कि ऐसे मृत्यु भी कभी हो सकती है ? अर्थात् कभी नहीं। वस्त्र आप के जल चुके थे और ऐसी अवस्था में आप हरिद्वार की ओर चल पड़े। रास्ते में आप को एक पहाड़ी पंडित मिला और आप को अपने घर में ले गया। उस ने आप की अच्छी तरह सेवा की और आप पूर्णता स्वस्थ हो गए। स्वामी जी ने किसी घर पर देर तक रहना उचित न समझा और बिना कहे एक दिन वहां से चल पड़े। तत्पश्चात् देवप्रयाग में आ गए। दैव इच्छा प्रवल थी और आप को फिर बुखार हो गया। दुःख जब आता है तो वह एकेला नहीं आता। चन्द दिनों में परिस्थिति और भी खराब हो गई। स्वामी जी ने सोचा "कि अब हो ही क्या सकता है। प्रारब्ध ने मुझे ईश्वर से विमुख करा दिया है।" स्वामी जी को अनेक स्थान पर अनेक संकट आते रहे जिन का कोई अन्त न था। स्वामी जी असाधारण प्रकृति के मनुष्य थे अतः दुःखों को भाग्य का दिया हुआ उपहार समझ कर सहा और भगवान् से विमुख न होकर अपनी वृत्ति में लगे रहे। और युक्त मानसिक अशांति के कारण त्रिवेणी पर जाकर अपने आप को उस में गिरा देने का निश्चय किया। आप ने सोचा कि इस प्रकार दुःखों की निवृति हो जायेगी ? पहले किए गए अपने शुभविचारों को आप भूल गए और सायंकाल के समय जबकि यात्रियों की भीड़ न थी, त्रिवेणी पर पहुंच गए। गंगा के बीच में जो घाट था ठीक उसी पर आ गए। अर्थात् जहां गंगा और आलोकनन्दा का मेल हुआ था वहीं पर आन पहुंचे। हर हर गंगे धारा चलती ही थी और आप भी अपने विचारों की धाराओं में चलते रहे, कि, क्या करूं। भगवान को याद करके

आप की आंखों में आंसु आ गए। आप गिरने ही वाले थे कि ठीक उसी समय स्वामी जी ने एक आवाज़ सुनी कि 'बंगाली डाक्टर के पास जाओ, तुम ठीक हो जाओगे'। साधु लोग ही ऐसी आवाज सुन और समझ सकते हैं। प्रभु का आदेश जान कर आपने अपना इरादा बदल लिया। और बंगाली डाक्टर के पास पहुंचे। वहां बिना किसी पैसे के इलाज होता था तो आप का अच्छी प्रकार से इलाज हो गया।

भगवान की कृपा से आप पूर्णतया स्वस्थ हो गये। आप का भाग्य दुःख से ही भरा हुआ था जिसे लिखते हुए हम भी दुःख का अनुभव करते हैं। गुहा में भी कुछ न था जिस से आप को कुछ सुख मिल सके। प्रत्येक बात के लिए आप को दुःख उठाना पड़ा था।

एक बार स्वामी जी को अग्नि की आवश्यकता पड़ी। सोचने लगे कि कहां जाया जाए, चारों ओर जंगल ही जंगल हैं। वहां से १॥ मील पर एक हरिजन का घर दिखाई देता है। वहां जाकर एक जलती हुई लकड़ी के साथ आप वापिस लौटे। भाग्य की इच्छा थी और बर्षा होने लगी (रुम-झुम-रुम-झुम) शोर के साथ बादल गरजने लगे और आप की आग बुझ गई। महाराज जी फिर वहीं से आग लेकर लौटे। रास्ते में घास भी बहुत बढ़ी हुई थी और वर्षा भी अभी २ हुई थी। अतः गले घास में आप ने लकड़ी को बुझा दिया। तीसरी बार भी जब ऐसा ही हुआ तो महाराज जी बहुत व्याकुल हो गए। उमर भी काफी थी और बार २ इस प्रकार जाना, आना बहुत कठिन था। अपने आपको समझा कर कि 'What cannot be cured, must be endured' सन्तुष्ट किया। अपनी शक्ति के बाहर की चीजों को सहन

करना ही उत्तम है पर गुण है। आप सदा दुःखों से घिरे रहे। गुहा में वास कई बातों के लिए तो स्वतन्त्रता स्वरूप है पर कई बातों के लिए तो परतन्त्रता का मुख भी देखना पड़ता है। कभी २ छोटी २ वस्तुओं के लिए स्वामी जी को चिन्ता भी करनी पड़ती थी। ऐसी परिस्थितियों में रहना कठिन ही है इस प्रकार सोचते हुए अपने आप को और भी कठिनाई में पाया। परन्तु आप स्वावलम्बी और पुरुषार्थी थे। आपने देववाणी का विचार करते हुए गुहा को छोड़कर जाना अनुचित समझा ऐसी कठिन बातों से मानो आपको शक्ति मिली। "सन्तोष परमधन" इस पर चलते हुए आप संतुष्ट रहे। वर्षा गिर रही थी आप ने अपनी आंखों को ऊपर किया...... वर्षा के जल से आपका शरीर कांपने लगा ऐसा प्रतीत होता है कि आप के अश्रुवारि ही उस समय आप को उष्णता पहुंचाते थे और प्यास को मिटाते थे। वर्षा की धारा। किन्तु आप विचलित न हुए। ईश्वर अन्र्यामी है और क्षण में ही अन्तर की अभिलाषा को पूरा करने वाला है। उसी समय एक व्यक्ति आप से कहने लगा, "हे महापुरुष" आप को सर्दी लग रही है और आग की भी जरूरत है। हम ऋषिकेश से आये हैं। हमारे पास सब सामान मौजूद है। अतः जो कुछ भी हमारे पास है उसे ग्रहण कीजिए। स्वामी जी इस व्यक्ति की उदार भावना को देखकर चकित रह गए और भगवान् की महिमा समझ कर चुप रहे। (योगक्षेमं वाहम्यहम्) इसी का नाम है। सहर्ष आपने उसकी दी हुई वस्तुओं को ग्रहण किया और गुहा में चले आए। कौन जाने किस देश में किस रूप में नारायण मिल गए। आहार विहार के लिए आपको दुःख ही उठाना था जिस कारण आप ने कई उपवास भी किये। पत्र और मूल ही तो था। गुरुदेव जी ने चलते २ कई बूटियों को उठाकर कहा था कि

अनिल अर्द्ध बूटियां सब्जी बनाने के काम भी आती हैं और ये बहुत उपयोगी भी हैं। इससे पता चलता है कि स्वामी जी इन्हीं बूटियों के आधार पर रहते थे। हमने सुना है कि कभी २ आप ऊंची चोटियों पर जाकर चुंटि (भिक्षा) मांग कर लाया करते थे और बड़े २ टिक्कर (रोटी) बनाकर रख लिया करते थे। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्य अर्थात् तपस्या से ही ब्रह्म को जाना जा सकता है। प्रत्येक प्रकार के दुःख को आपने आनन्द ही समझा। पहले से ही आप साधक थे आहार वा मिताहार के पुजारी थे। अब भी उनके व्यवहार को देखकर हमें ज्ञान होता है कि इन्हीं कारणों से आप ने बनों में रहने का साहस किया। श्मशान की भी वस्तुओं को आप बुरा न समझते थे और इसी लिए वहां से एक वस्त्र उठा कर गङ्गा जी में पवित्र करके ओढ़ लेते थे। संन्यासी लोगों के लिए यह घृणा की वस्तु नहीं है। संन्यासी के निर्वाण वेष को देखकर लोग चकित होते हैं परन्तु उन के लिए तो यह सब कुछ तुच्छ है। ऐसी परिस्थितियों में भी आप व्याकुल न हुए, क्योंकि इस से पहले आप इस से भी अधिक दुःखों का सामना कर चुके थे। निरन्तर दुःख भरे जीवन में और दुःख का स्थान कहां? विषय सुख विषयी के लिए जैसे अमृत में वैसे ही वह मोक्षेच्छु (संन्यासी) के लिए विष के समान है। सत्य, अहिंसा, सरलता और सहन-शीलता का अभ्यास ही आप लोगों की उत्तम वस्तु है। स्वामी जी शारीरिक सुख की पूर्ति के लिए बाहर नहीं आए थे, आप तो मानसिक सुख के लिए निकले थे। क्योंकि आप को इस का विशेष रूप से चैतन्य था कि शारीरिक सुख तो पशु भी प्राप्त कर लेते हैं। स्वामी जी को यदि ऐसे सुख की इच्छा होती तो उन के देश में ही ऐसी व्यवस्था हो सकती थी। 'ज्ञानं विहीनः पशुः' जिस के पास आत्म

ज्ञान नहीं वह पशु ही है। तेरह वर्ष की ही आयु में लोग आप को चाहने लगे थे। क्योंकि आप के भक्तिभाव को देकर सभी लोग प्रेम को आप पर ही केन्द्रित कर देते थे। एक तो आप ब्रह्मचारी थे, दूसरे लोगों को भागवत् की कथा भी सुनाया करते थे जिस कारण आप को बहुत चाहते थे। विषय सुख से घृणा करते हुए आप भगवान् में दत्तचित्त रहते थे। सच है कि :—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं बृज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि, मा शुच ।।

ईश्वर का प्रेम ही जीवन है और उस की प्राप्ति से ही जगत का कल्याण जान कर आप भगवान् के मार्ग पर चलते रहे। हठयोग का अभ्यास आप निरन्तर करते रहे। हठयोग (षड़ सम्पत्ति) और उस की विकट क्रिया करने के लिए आज भी आप उपदेश देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक प्रकार के साधनों से अपनी आत्मा को शरीर से भिन्न जान कर अग्नि में अग्नि अथवा जल में जल जैसे मिल जाता है वैसे ही शरीर के तत्व को तत्व में मिला देना तुच्छ ही समझते थे। इस से प्रतीत होता है कि ऐसे साधनों वा क्रियाओं के कारणों से आप का शरीर रोगग्रस्त रहा करता था। साधन का नाम साधु। बिन गरजे बरसे नहीं। बिना साधन के ज्ञान कैसे उपजे? साधन ही ज्ञान का लक्ष्य है। साधना के बिना पास किया हुआ ज्ञान मूर्खों का ही ज्ञान है। इसी लिए साधु (ज्ञानी) लोग ज्ञान प्राप्त करने के लिए साधना में लीन रहते हैं। ज्ञानी लोगों का भाव और लक्ष्य भिन्न २ हैं। उन की भक्ति को परा भक्ति और भाव को परा भाव

कहते हैं। जैसा कि गीता में भी लिखा है कि :—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद् भक्ति लभते पराम्॥

आत्मस्थित हो जाना ही पूर्ण ज्ञान का परिचय है। इस के लिए तर्क या उपदेश की विशेष अपेक्षा नहीं रहती। गुरु उपदेश ही काफी है। आत्मस्थित हो जाना वा समाधि में एकाग्र हो जाना ही ज्ञान के लक्ष्य हैं। यह ठीक है कि साधनों के कारण काया अस्वस्थ हो जाती है परन्तु आत्मशक्ति के बल से फिर स्वस्थ होने लगती है। स्वामी जी की सारी तपस्या इन्हीं साधनों का ही फल है, जो इनके मुखारविंद पर तेजरूप छटा की झलक दिखाई देती है। वर्तमान काल में ऐसा साधन सम्पन्न महात्मा हमारी दृष्टि में आया नहीं और ऐसा आएगा न ही, यह सन्देह पूर्ण है। साधन सिद्ध होने के बाद भी आप एकान्त में ही रहे। ज्ञान के बाद जैसे अज्ञान का अभाव हो जाता है ऐसा ज्ञान होने के बाद ज्ञान का भी। संसार जो सत्य प्रतीत होता है वह भी असत्य है, इसी लिये अपने रचित संसार से आप दूर ही रहे। अगर असत्य भ्रांति का ज्ञान हो गया इस संसार में रहने की क्या आवश्यकता है। इसी लिए आपने एकान्त में रहने को चाहा और वैसा ही किया। भगवद् इच्छा से ही काफी समय व्यतीत हो गया। अब उस जंगल से गुजरती हुई मोटर सड़क हो जाने के कारण ही स्वामी जी के पास असंख्य जनता आने लगी है और पारमार्थिक सम्बन्ध स्थापित किया है। हम ने यह पूर्ण पुष्टि की है कि जो व्यक्ति स्वामी जी के पवित्र चरणों में आ जाता है वह कभी भी स्वामी जी को भुलाता नहीं चाहे वह गृहस्थी हो या संन्यासी।

अपने पूर्ण ज्ञान की वजह को ही आप पूर्ण समझते हैं। इसी पूर्ण रूप सहज अवस्था के कारण ही अपने को हठयोग रूपी तप से हटा लिया। इदानीं प्रभु (स्वामी जी) स्थितप्रज्ञ अवस्था में जनता के कल्याण हेतु, अपनी तपस्या शक्ति का संचार करने में उत्सुक हुए और प्रत्येक आगन्तुक के मनोगत भावों को पूरा करने के लिए अपना बहुमूल्य समय भी नष्ट कर देते हैं। हम देखते हैं कि स्वामी जी को अन्य जन पुरुषोत्तमानन्द कहने के स्थान पर **भगवान श्री पुरुषोत्तमानन्द जी** कह कर ही अपने को अहोभाग्य समझते हैं। तुलसीदास ने ठीक ही कहा है :—

मम दर्शन फल परम अनूपा ।
जीव पाव निज सहज स्वरूपा ।।

जब समाज में यह बात चलती है कि स्वामी जी कर्म जीवन (गृहस्थी जीवन) में जज थे। स्वामी जी को पूछने से पता चलता है कि यह बात असत्य है, हां यह ठीक है कि कई जज भक्त इनके प्रेमियों में से हैं। स्वामी जी बचपन से ही भगवत् भक्तों में से एक थे और सांसारिक वृथा मोहों से बचकर शुरु से ही ब्रह्मचारी रहे। स्वामी जी ब्रह्मपुरी में पूर्ण निर्वाण पद पर रहे। परन्तु हम ने स्वामी जी से बात चीत कर मालूम किया कि स्वामी जी ने सब साधनों की सिद्धि गुहा में ही प्राप्त की। वासना का तो अन्त हो ही चुका था इस लिए सहज में ही काम, क्रोध आदि विकारों को जीतने का कौशल आप को गुहा में ही प्राप्त हो चुका था। इन्द्रिय-निग्रह के अभ्यास से मनोनाश किया। "मन के स्थान पर आत्मा के कार्य को देखना," यही प्राप्त

किया। स्त्री-जाति के ऊपर आत्मा रूप छोड़ कर आप दूसरी बात न जानते थे। ऐसे महापुरुषों की नज़रों में ऐसे भाव टिक भी नहीं सकते। मातृव्रत नहीं बल्कि आत्मवत् सर्व भूतेषु यही देखते हैं। यह शास्त्र सिद्ध बात है कि ज्ञान होने के पश्चात् अपना, पराया, लाभ, हानि नहीं रहती। इस लिए ज्ञानियों की अवस्था कभी तो बालकवत् कभी उन्मादवत् कभी पिशाचवत् वा कभी जड़वत् हो जाती है। हम ने व्यवहार में भी देखा कि स्वामी जी संसारी बातों से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। सब की बातों पर ही विश्वास कर लेते हैं और प्रत्येक प्रकार की परिस्थिति में सरलता से ही व्यवहार करते हैं। हंसते और हंसाते रहते हैं। यह महान् आत्मा नहीं तो और क्या है? अहो पुरुषोत्तम, भगवान् तुम ही हो, तुम ही आदि प्रभु और विष्णु के अवतार हो। तुम्हारे पास रहना वा तुम्हारी चरण-धूलि, मुक्ति की अपेक्षा अधिक लाभकारी है। आप में एक ऐसी पारमार्थिक रौशनी है जिस कारण सभी आप की कृपा के आकांक्षी हैं। अब भी स्वामी जी कभी २ नीचे आकर भक्तों को दर्शन देते हैं और उन की अभिलाषाओं को पूरा करते हैं। दक्षिण के लोग तो चातक की भान्ति आप की बाट देखते रहते हैं। स्वामी जी जंगल में बिना किसी के भरोसे पर ही रहे। स्वावलम्बन पर ही अपनी प्रारब्ध को पाने की कोशिश की और इसी आधार पर ही भक्ति उपासना आदि में लगे रहे। आप ऐसी प्रकृति के महात्मा हैं जो परिग्रह को बुरा समझते हैं। अपना सुखरूप प्रारब्ध भी परुषार्थ से ही चाहते हैं। गुरु महाराज जी के ऐसे श्रेष्ठ विचार यदि हम जान लें तो यह हमारे लिए एक उत्तम शिक्षा है। महात्मा के लिए केवल उदरपूर्ति के लिए भिक्षा लेना विशेष है।

किसी का अनुग्रही होना पाप है। प्रारब्ध अनायास ही मिल जायेगा साधक के लिए अच्छी साधना है जिससे हम उस भगवान की कृपा को भी देख सकते हैं और मन को भी भगवान की ओर मोड़ सकते हैं। प्रारब्ध को ग्रहण करने में भी विचार से काम लेना चाहिए नहीं तो वासना एक ऐसा जन्म देने वाला बीज है कि प्रारब्ध ग्रहण करते ही वासना रूपी कर्म द्वारा पुनः वह संचित रूप बना लेता है। हम प्रारब्ध को भोग कर ही समाप्त कर देते हैं, परन्तु इसके साथ जो वासना करते हैं कि आगे भी हमें ऐसा मिलना चाहिए, तो हम वासना के ही चक्कर में पड़े रह कर संसार से कूच कर जाते हैं। स्वामी जी के संग से हमें जो ज्ञान मिला है वह स्वामी जी के निरन्तर अभ्यास का ही फल है। स्वामी जी मुक्त अवस्था में हैं और मानों लोककल्याण के हेतु पूर्ववत् निष्काम सेवा करते हैं। स्वामी जी इन सब बातों को ईश्वर इच्छा ही मानते हैं। परन्तु मैं तो कहूंगा कि मुक्त पुरुष अपने फलाफल को न देखकर ऐसा कर ही लेते हैं। कर्मों का फल ऐसे लोगों को नहीं मिलता क्योंकि ये तो मुक्त रहते हैं। वह फल तो भक्तन और शिष्य लोगों को ही मिलेगा। इस लिए महापुरुषों की सेवा का फल खुला पड़ा है। और जो मुक्त पुरषों की सेवा करते हैं वे ही फल के भागी बनते हैं। शुभ फल तो उन को मिलेगा जो प्रेम दृष्टि से ऐसे माहपुरुषों को देखते हैं, और अशुभ फल उन को मिलेगा जो उन के पास रहते हुए भी उन के अशुभ की कामना करते हैं। अनेकों साधक ऐसे देखे गए हैं जो अपने साधनों पर न चलते हुए तथा अपने को असहाय देखकर दूसरे पर आश्रित हो जाते हैं। जिस कारण जनसमाज भी उन की निन्दा ही करता है। ऐसे साधक आत्मशक्ति वा भगवान की आलम्बित कृपा कैसे पा सकते हैं। जिस

उद्देश्य वा सिद्धि के लिए घर से बाहर आते हैं, उस की पूर्ति के विषय में ऐसे लोग भूल ही जाते हैं। गुरुदेव जी का कथन है कि अपने अन्दर जो अखण्ड सुख निहित है वह गहरी साधना से ही प्राप्त करना चाहिए। भगवान को यदि चाहते हो तो उसको भूलो मत और न ही अपने उद्देश्य को छोड़ो। स्वामी जी के आगे भेंट की हुई मनोहर एवं सुन्दर वस्तुओं को जब हम देखते हैं तो हम यह अनुमान नहीं लगा सकते कि यह भगवान की कृपा है? अथवा प्रारब्ध ही आप से आप आया है। अधुना आपके पास प्रत्येक प्रकार की व्यवस्था है। वस्त्रों की भी और खान पान की भी, फिर भी आप भोग विलास में नहीं पड़ते। थोड़ी सी ही चीज पर अपनी गुज़र करके सन्तुष्ट रहते हैं। महात्मा जी के इस प्रकार के व्यवहार से भी यदि हम ऊपर न उठ सके तो इसका उत्तरदायित्व हम पर ही होगा। आप की तपस्या से पता चलता है कि इतना विभोर होते हुए भी आप ढीले ढाले नहीं हैं। आगंतुक लोगों की भीड़ को देखकर भी आप निरुत्साहित नहीं होते हैं और उन लोगों की भावनाओं को जानकर उनके लिए यथायोग्य व्यवस्था भी कर देते हैं। आपने अपने जीवन को कभी कर्म से अलग नहीं किया। ऐसे बहुत लोग आते हैं जो संकोच के कारण अपनी बात कहने में असमर्थ रहते हैं परन्तु स्वामी जी उनकी गोपनीय बात को भी जान लेते हैं और यथायोग्य व्यवस्था भी कर देते हैं। इस आयु में भी आप तटस्थ दिखाई देते थे। इसका कारण यह है कि आहार बिहार में बड़े नियमों पर चलते हैं और सात्विक भी हैं। १२ या १३ वर्ष आपने फलाहार पर ही व्यतीत किए। अब एक समय अन्न भी लेते हैं परन्तु वह भी बहुत थोड़ा और स्वाभाविक। आपको साग सब्जी में भी प्रेम है वह भी कुछ फीका। खट्टी मीठी चीजें

आप नहीं चाहते और चाये कौफी से भी आप परहेज करते हैं। स्वामी जी बड़ियारा अथवा वेला नामी बूटी का ही पानी पीते हैं। यह बड़ी पौष्टिक और दांत पेट और बात के लिए लाभकारी है। आपका आहार तो इतना थोड़ा है मानो दृष्टि से ही अपने को पुष्ट कर लेते हैं। इसी के फलस्वरूप स्वामी जी अब पूर्ण स्वस्थ और सुन्दर रूप में हैं। अब भी इतने कर्मठ हैं मानो १६ वर्ष के युवक हो। और एक ही समय पर अनेकों काम कर लेते हैं। मेरे में ऐसी विद्या नहीं जो आप के विषय में कुछ लिख सकूं। जो कुछ मैंने लिखा है वह स्वामी जी से ही सीखा है। आप की गुणोखानी तभी हम व्यक्त कर सकते हैं। जब आपकी मनोहर मूर्ति को एक बार देख लें। आप अहिंसा, सत्य और दया के प्रतिरूप हैं। तपस्या और ब्रह्मचर्य की पूर्ण शक्ति अर्थात् सारी विभूति मानों आपके मुख-मण्डल पर छा गई हो। स्वामी जी की भक्ति ही इन सब बातों का मूल कारण था। इन की मार्ग कहानी कहता हूं।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी जब एक बार कन्या कुमारी तक आये थे तब हमारे स्वामी जी निर्मलानन्द जी की आज्ञानुसार उन के पास गये। स्वामी जी ने उन से स्नेहपूर्ण भाव से पूछा हे भक्त ! अपनी आवश्यकता कहो।" स्वामी जी ने आत्म विभोर हो उन्हें शीश नवाया और कहा, "आप की चरण-पादुका ही मेरे लिए सर्वोत्तम प्रिय वस्तु है। श्रेयस्कर करना चाहता हूं।" स्वामी जी उन की बाल सुलभ बातों पर मुग्ध हो गए और उन की मांग को टाल न सके, बोले "बेटा ! इन चाम्र के जूतों को क्या करोगे ? यदि अधिक लालसा है तो मैं उसे अवश्य ही पूर्ण करूंगा। एवम् अपने दैनिक व्यवहार के

खड़ाऊं कलकत्ते से भेज दूंगा।" वे खड़ाऊं स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने भेज दिए। संसार की वह धरोहर, दक्षिण में त्रिवुला नामक स्थान पर स्वामी जी के अपने हाथ से बने आश्रम में आज भी ज्यों की त्यों उपस्थित हैं और यथापूर्व उस की पूजा होती है।"

यह है सच्ची भक्ति का एक उदाहरण। हम ने अनेकों बार ज्ञान-चर्चा सुनी, भक्ति के सागर में डुबकियां लगाईं परन्तु हमारा अस्थिर मन कहीं भी स्थिर न हुआ। कुछ समय पश्चात् सब कुछ भुलाता गया। जीवन का अन्त तो हो ज़ाता है परन्तु उस के आदर्श कभी नहीं मिटते।

स्वामी जी बचपन से ही सरल स्वभाव वाले थे। प्रायः लोग इन से इसी कारण विशेष स्नेह रखते थे। एक बार जब ये वायु-रोग से पीड़ित हुए तो लोगों को आश्चर्य हुआ कि ऐसे सद्‌भाव वाले लड़के को किस कारण से दुःखी होना पड़ रहा है। इन की सत्यता का अनुभव करके ही स्वामी निर्मलानन्द जी ने अनेक आश्रमों के प्रबन्ध का उत्तरदायित्व इन पर डाल रखा था। स्वामो निर्मलानन्द जी राम-कृष्ण सम्प्रदाय के दक्षिणी मठ के प्राणाधार थे। हमारे स्वामी जी ने लगातार बारह वर्षों तक पूर्वोक्त महापुरुष मनुष्य की पहचान उस की बातों से नहीं, अपितु उस के कर्मों से ही होती है।

आप की सरलता दूसरों को भी आकर्षित करती है। एक बार स्वामी जी ने मुझ से बात करते हुए कहा, "अनिल! मैं बच्चों जैसा हूं न" मैं बड़ा आश्चर्य चकित हुआ और सोचा, किस प्रकार उन्हों ने अपनी तुलना एक बालक से कर अपनी सरलता का परिचय दिया है।

उन का एक पक्ष यदि कोमल है तो दूसरा कठोर। साधारण सा त्रुटि होने पर ऐसा भय होता है मानो क्या होगा ? उन की कठोरता चिरस्थायी हो ऐसी बात नहीं पत्थर की भान्ति कठोरता से मोम की भान्ति कोमल होने में उन्हें एक क्षण ही लगता है।

उन का सामीप्य किस प्रकार उपयोगी होता है, इस का एक उदाहरण निम्नलिखित है :—

"एक बार जब मैं उन के हाथ धुला रहा था तो किसी त्रुटि का अनुभव कर उन्हों ने मुझे 'कुत्ते' शब्द से सम्बोधित किया मन में क्षोभ उत्पन्न हुआ और मन पर तामस का आवरण चढ़ गया परन्तु जब मन ने धैर्य धारण किया तो ज्ञान हुआ कि कुत्ता कोई बुरा तो नहीं होता वह तो स्वामी भक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण है। सद्भावना मनुष्य को सत्य की ओर ले जाती है। प्रत्यक्ष है कि हमारी भावनाओं के अनुकूल ही ज्ञान उत्पत्ति होती है। अतः हमें अपने मन में कभी भी दुर्भावना नहीं लानी चाहिए। मेरी सद्भावना का उद्गम ही स्वामी जी की आंतरिक प्रेरणा और उन का सामीप्य है। ज्ञान का अभाव वास्तविक शिक्षक पर ही अवलम्बित है। तमोगुण से सद्गुण की ओर अग्रसर होने के लिए हमें सद्गुण की आवश्यकता है। सन्त जन भी सुख-अनुभव करते हैं, पीड़ित होते हैं। ये सब कुछ दूसरों के लिए आप सहन करते हैं, क्योंकि इन का जन्म ही अन्य प्राणियों के हित के लिए होता है इसी प्रकार इन का क्रोध भी शिष्यों के कल्याण के लिए ही होता है। अच्छे कारीगर की भान्ति एक सद्गुरु अपने शिष्यों को कठोरता की अग्नि और जल की शीतलता से पार करता हुआ उसे सत्य रूप देता है।

वास्तव में इन की सरलता छिपी नहीं रहती क्योंकि हम ने देखा कि एक ज्ञानी होकर भी भगवत् का पाठ करते समय तद्रूप हो जाते हैं। प्रसंगवश वे कई बार दुःख में अश्रु बहाने लगते हैं तो कई बार सुख से विह्वल हो उठते हैं। महापुरुषों की भान्ति ये भी

'वज्रादपि कठोराणि मृदुनि-कुसुमादपि' है।

सुधार का सर्व-साधारण माध्यम

गुहा के भीतर रहते हुए भी स्वामी जी ने किसी भी उच्च नेता से कम कार्य नहीं किया। पिछड़े हुए प्रदेश में विद्या का प्रसार (स्कूल) अन्य संसार से संबंध स्थापन (डाक घर) रोग ग्रस्त अशिक्षित जनता के लिए चिकित्सालयों का प्रबन्ध ही उनके कार्य का विस्तृत क्षेत्र है।

क्रियात्मिकता का महत्व–

एक बात बड़ी विचारणीय है कि स्वामी जी पूर्ण अवस्था को पहुंच कर भी कर्मों का ही उपदेश देते हैं। इसी लिए कहते हैं कि कर्म के बिना ज्ञान भी निरर्थक है। यदि ज्ञान होते हुए भी मनुष्य उस का उपभोग न करे अर्थात् कर्म न करे तो वह निरा पशु है। कर्मों की ओर हमें विशेष ध्यान रखना चाहिए। जिस प्रकार से आंतरिकों शुद्धि आवश्यक है उसी प्रकार शारीरिक स्वच्छता भी। आहार-व्यवहार पर स्वामी जी स्वयं तो विशेष ध्यान रखते हैं, साथ २ दूसर

को भी ऐसा करने का निर्देश देते हैं। आश्रम निवासियों एवम् आगन्तुकों को भी रहन-सहन का पूरा निर्देश करा देते हैं। स्वामी जी का कथन है कि किसी भी समय अथवा स्थान पर (पूर्ण अवस्था से पहले) जान बूझ कर अपने कर्मों को त्याग देना अनुचित है। जब तक देहाध्यास है तब तक कर्मों से डरना नहीं चाहिए क्योंकि निष्काम साधना भी एक उत्तम पूजा है। कर्मों से कर्मों का नाम भी होता है।

"केवल मौन धारण करने और चुप-चाप बैठे रहने से साधक को लाभ-प्रद नहीं होगा" साधक के निरर्थक भटकने पर स्वामी जी सन्तुष्ट नहीं होते। किसी की ऐसी दयामय दशा देखकर उन का हृदय उमड़ पड़ता है (वे साधक को निर्देश दे ही देते हैं)।

स्वामी जी में ज्ञान और कर्म, दो महानताओं का सम्मिश्रण है। उनका प्रत्येक कार्य-कलाप ज्ञान और कर्म का आलम्बन लिए होता है। कर्म के क्षेत्र में मानो विवेकानन्द हैं और परमहंस (राम-कृष्ण) की भान्ति तुरन्त ज्ञानावस्था आते ही समाधि लगा लेते हैं। स्वामी जी इन महापुरुषों के सिद्धान्तों पर चलने वाले हैं। ऐसा अनुभव होता है मानो इन दो शक्तियों का एक रूप ही स्वामी जी हैं। उपरोक्त छाप स्वामी जी पर बचपन में ही लग गई थी, फलस्वरूप तत्कालीन मठ से "प्रबुध भारत (पठ पत्रिका) मंगा कर पठन किया करते थे। तदनन्तर सम्प्रदाय आकर्षण बढ़ता रहा। उसी स्नेहवश कुछ समय पश्चात् आप स्वामी निर्मलानन्द जी से मिले।

ठाकुर (राम-कृष्ण-परमहंस) समाधिस्थ पुरुष थे। वे निष्क्रिय परमात्मा का ज्ञान जैसे क्रियामान जगत् से ही होता है इसी प्रकार

परमहंस समाधि में ही कर्मों का प्रतिवादन करते हैं। असत्य (संसार) में ही तो सत्य निहित है। तत्कालीन बंगाल में सच्ची भक्ति नहीं थी और न ही भोगों के हृदय में सच्ची श्रद्धा थी। फलस्वरूप मानसिक अशान्ति और दारिद्र्य का दुःख भयंकर रूप धारण कर रहे थे। उस समय मन्दिर में जाना मात्र ही भक्ति कर्म था। ठाकुर के उपदेश से ही लोगों के हृदयों में सेवाभाव का संचार हुआ था। दरिद्र की सेवा को नारायण की सेवा का महत्त्व दिया गया। सेवा का क्षेत्र विस्तृत हो गया। उस सेवाकार्य को पूरा करने का श्रेय स्वामी विवेकानन्द जी को मिला। स्वामी विवेकानन्द जी ने देश और राष्ट्र से बाहर अन्य राष्ट्रों में भी सेवा के महत्त्व का प्रकाशन किया। विश्व के कोने २ में इन के प्रभाव से आश्रमादि की स्थापना हो गई थी और सत् सनातन धर्म का रूप विस्तृत हो गया था। कर्मों में रत हो कर भी समाधि लीन रहना विवेकानन्द जी ने कर दिखाया था। पुरातन काम में भी महात्मा जन सेवा का प्रतिवादन करता को था परन्तु अपने को ध्यान में ही समाधि रूप ज्ञान को पाने की चेष्टा करता था किन्तु विवेकानन्द जी ने अपने गुरु जी की इच्छा की पूर्ति के हेतु दारिद्र्य की निष्काम सेवा द्वारा भगवान् की ही सेवा दिखा उपरोक्त कार्य को पूरा कर दिखाया। इन्हों ने सेवा द्वारा ही नर में नारायण का रूप देखा। इन का कथन है 'हमारे सम्मुख जो नर है, वे भगवान् का रूप है, इन की सेवा छोड़ कर और किस ईश्वर की पूजा की जा सकती है ? आधुनिक महात्मा लोग जो सेवा करते हैं उस का सूत्रपात विवेकानन्द जी ने ही किया था। हमारे स्वामी जी के अन्दर वही कर्मशक्ति और समाधि शक्ति काम करती है। जिस प्रकार पूजा अर्चना की विधि आवश्यक है उसी प्रकार अन्य कर्म भी विधिवत्

होने अत्यन्त आवश्यक है। अन्यथा अनिष्ट है। स्वामी जी के सम्मुख कोई भी कार्य येन-केन-साधनेन पूरा नहीं किया जा सकता अपितु प्रत्येक कार्य की विधि निश्चित है जो सुन्दर भी होती है।

देखा गया है कि आप कार्य तो करते हैं ध्यान-अवस्था आते ही कार्य छोड़ समाधि में लीन हो जाते हैं। यह स्थिति इन के ज्ञान और कार्य की अवस्था है अर्थात् ठाकुर जी की समाधि शक्ति और विवेकानन्द जी की कर्म शक्ति एक साथ स्वामीजी के अन्दर पाई जाती है। ज्ञान के हेतु कर्मों के बन्धन में नहीं रहा जा सकता। मुक्त पुरुष कुछ करते हुए भी न करने के बराबर अर्थात् निर्लिप्त होकर कुछ कर ही लेता है। स्वामी का कहना है, लगन हो, परन्तु बन्धन नहीं होना चाहिये। जिन कर्मों से हम डरते हैं उसका कारण कर्म नहीं अपितु वासना, तृष्णा और मन का अहम् भाव है। यदि हम कर्मों के फल की आशा न करें तो वह बन्धन की अपेक्षा मुक्ति प्रदाता होता है। ऐसी स्थिति भी समाधि वत् साधना ही मानी जाती है। अतः कर्मों से समाधि भी हो सकती है, इस पवित्र भाव को रखते हुए भी स्वामी जी गुहा में भी शिष्य को कई अनेकानेक प्रकार के काम पर लगा देते हैं। जैसे कि रस्सी बनाना, घास काटना, सब्जी लगाना-अतिथि सेवा तथा पूजा पाठ आदि में रत रहना। शिष्य गण भी प्रभु की आज्ञा पा निस्पृह नाते से बछड़ों की नाईं इधर उधर भाग पड़ते हैं। इस में कष्ट की कोई बात नहीं मानते, आनन्द का ही अनुभव करते हैं। प्रभु की लीला देखिये कि पूजा पाठ के ज्ञान को रोचक बनाने के हेतु किस प्रकार भिन्न २ कर्मों को साधन रूप का प्रयोग किया है। साधारण कार्यों के साथ २ नित्य-प्रति हवन होना अत्यन्त आवश्यक है। इन

(स्वामी जी) के तत्व को सब कोई नहीं जान पाता। यथा आप समुदाय के पर्व भी पूर्ण समारोह से सम्पन्न कराते और भगवान् से सम्बन्ध स्थापन के अनुष्ठान भी बनाये रखते हैं। यद्यपि बड़े २ यज्ञों और पर्वों पर अन्य जन स्वामी जी को सादर निमन्त्रित कर उनकी आज्ञानुसार कार्य चलाते हैं तथापि आप अपनी आज्ञा पालन की ओर विशेष ध्यान नहीं देते हैं। किसी भी स्थान अथवा समय में आप को अभिमान छू भी नहीं पाता। ये महापुरुषों के ही चिह्न हैं यदि प्रत्येक जन अपने अहं-भाव का घात न कर डाले अथवा ऐसे भाव ही उत्पन्न न हों जिन का सम्बन्ध गर्व से हो तो वह निज की पहचान की सामर्थ्य रखता है। एवम् गुणी जनों के गुणों का अवलोकन भी उसी शक्ति से कर सकता है। इसी अपरोक्ष ज्ञान के द्वारा ही हम स्वामी जी की पहचान एक साधारण रूप में नहीं अपितु एक महान् आत्मा के रूप में करते हैं। प्रत्येक बात को गुरु-प्रदत्त ज्ञान के द्वारा ही हम प्रमाणित कर सकते हैं, निज ज्ञान से ऐसा सम्भव नहीं। आप की साधारण से साधारण बात भी शिक्षाप्रद है। आप के कथनानुसार हमें प्रत्येक को उस के फल की आकांक्षा से नहीं करना चाहिये और न ही उस के श्रेय की प्रतीक्षा करनी चाहिये अपितु उदारतापूर्वक निष्काम भाव से उसे सम्पन्न करना चाहिए। स्वामी जी प्रत्येक वस्तु को देते समय स्वयं न देकर दूसरों के हाथों से ही दिलवाते हैं। प्रत्यक्ष है कि वे उस फल की आशा उत्पन्न ही नहीं होने देते-प्रशंसा को ढका देते हैं। सत्य है कि आप किसी क्षमा अथवा अहं भाव के चक्र में ही नहीं पड़ते और न ही आप से कोई ऐसा कार्य भी होता है जो मर्यादा की सीमा को छूता हो। किसी भी छोटे कार्य को करते समय आप लज्जा अनुभव नहीं करते। कई बार तो सांसारिक लज्जायुक्त

कार्यों को अपने सम्मुख बड़े २ मनुष्यों से भी सम्पन्न करवाते हैं ताकि उन का अहं भाव वास्तविकता का अनुभव करे। आप के आदेश कुछ विचित्र से ज्ञात होते हैं किन्तु उस का पालन अमृत का सा स्वादन देता है। स्वामी जी के सिद्धांत अद्भुत हैं अतएव हम नहीं समझ सकते कि आप किस ढंग के महात्मा हैं। आप की लीला अपार है। धन्य प्रभु ! आप के गुणों की महिमा तो गुणी जन भी नहीं जान सकते, हम तो तुच्छ प्राणी हैं।

महापुरुषों के पास रहना खड्ग की धार पर चलना है उन को सन्तुष्ट करना अत्यन्त कठिन है। यदि ऐसा हो गया तो अपने मनोरथ भी पूर्ण हो गये। सेवा भाव को कठिन जान अपने मरोरथ को सिद्ध न किया जाए तो यह हमारी मूर्खता है। अपने असंतोष में ही संतुष्टि की खोज करना महान् कार्य है और यह सेवा कार्य एक महान् आत्मा ही करती है। इस का मूल कारण सहिष्णुता है जो उत्तम स्थान तक पहुंचा देती है। सहिष्णुता की कसौटी दुःख है। जितनी भक्ति दुःख में सम्भव है, सुख में नहीं।

"संतों की महिमा वेदों से भी परे है।" यह हैं बचन गुरु नानक के। सो ठीक ही तो बात है। महापुरुषों की लीला वेद में ज्ञेय नहीं क्योंकि वेदों का निर्माण भी तो महापुरुषों द्वारा ही हुआ था। इस का कारण यह है जिस प्रकार भरे हुए पात्र की आवाज़ नहीं होती उसी प्रकार महापुरुष लोग शान्त सागर की भान्ति मौन रहते हैं। जो अप्राप्य वस्तु किसी ने पाई उसी ने छिपाई है अतएव ज्ञानी व्यक्ति तुरन्त अपने मर्म को प्रकट नहीं करते। हमारे

स्वामी जी के ज्ञान की महिमा अद्भुत है। थोड़ी सी वस्तु देने वाले को भी महान् दानी का श्रेय देते हैं। एवम् स्त्री को समान-दृष्टि से देख के किसी में भिन्नता नहीं मानते। सांसारिक व्यवहार में ऊंच नीच पाई जाती है और प्रत्येक की अपनी २ मर्यादा निश्चित है परन्तु उस अन्तर में एक ही भगवान का रूप सुशोभित है, इस रहस्य को कौन जान सकता है? ऐसा ज्ञान रखने वाले हमारे स्वामी जी को न तो किसी वस्तु की चाह है और न ही किसी प्राप्ति पर प्रसन्नता। प्रत्येक अवस्था में प्रसन्न-चित्त रहना ही आप का स्वभाव है। स्वामी जी प्रत्येक प्राणी में अपने जैसी सरलता चाहते हैं। उसी के द्वारा उनकी चाह है कि प्रत्येक प्राणी उच्च आत्मा वाला बने।

आप की महानता का वखान करना कुछ असम्भव है। मौखिक रूप से ऐसे किसी भी प्रयास का विशेष लाभ भी नहीं हो सकता और यदि कोई बात लाभकारी हो सकती है तो प्रथम आप के दर्शन से, द्वितीय आप के श्रवण से और अन्ततः अपनी सेवा में ही मनोरथ सिद्धि है।

इस लेख के विषय को दीर्घ नहीं कर रहा। यद्यपि गुरुदेव की अनेकों महानताओं और उपदेशों को संस्था की सीमा में ही नहीं बांधा जा सकता। इन का ऐसा कोई गुण नहीं, जिस की पूर्णता का अभाव हो। जिस ने आप के दर्शन किए अथवा आप के श्रोतागण स्वयं को धन्य मानते हैं। इन की ख्याति की आवश्यकता नहीं आप स्व विख्यात हैं। आप की प्रतिभा अपूर्व है। स्वामी जी घण्टों तक ही आसन में बैठे रहते हैं। प्रायः कई व्यक्तियों को स्वामी जी के विषय में पूछने पर पूजन पर ही बैठे होने का निरन्तर कई बार उत्तर

मिला। सदैव तदाकार वृत्ति तच्चिन्तन, तत्कथनम् होने से तद्रूप का ही परिचय मिलता है। इसी कारण अन्य लोग भी जब इन के सान्निध्य में आकर बैठते तो सब कुछ भूल कर अपूर्व सुख का अनुभव करते हैं और यहां तक कि जीवन तक वहीं बिताने की इच्छा करते। यह आप के ब्रह्म विचारों का ही फल है कि आप के निकटवर्ती चारों ओर दिव्य सुख छाया रहता है। आप परमतत्त्व अथवा ईश के रूप ही हैं।

अभ्युत्थानाम् धर्मस्य तदात्मानाम् सृज्याम्हम् ।

सिद्ध पुरुष ही अवतार अथवा भगवान् के दूत कहलाते हैं। अवतारवाद के नित्य के अवतारों में तो ये महात्मा ही हैं। यदि भगवान् की सम्पूर्ण शक्ति नउ में विद्यामान न होती तो क्यों समस्त जनता उन के चरणों में नतमस्तक होती। माया के प्रभाव से ही वंचित व्यक्ति सम्पूर्ण ज्ञान के भण्डार हैं। जिस व्यक्ति ने अपरोक्ष प्राप्त कर आत्मज्ञान प्राप्त क र लिया। वह अपने साधन के अनुभव पर आत्म लीनता में ही तुष्ट रहता है। जिन को रुचि अत्मस्थ नहीं वह आत्मज्ञानी नहीं माना जा सकता। आत्मज्ञानी आत्मा की तुष्टि में संलग्न रहता है एवम् अन्य कोई इच्छा नहीं रखता। यह ज्ञान मुझे श्रीगुरुमुख से सुने प्रवचनों और उन की जीवन घटनाओं से ही हुआ था। महापुरुषों को किसी बात की अपेक्षा नहीं रहती यहां तक कि मुक्ति की इच्छा भी आप नहीं रखते क्योंकि इसी अवस्था में आप अपनी आत्मा को परमतत्त्व में मिला चुके हैं। फिर मुक्ति की कोई बात शेष भी तो नहीं रह जाती आप समाधि की इच्छा नहीं रखते क्योंकि

आठों याम उसी ध्यान में लीन रह कर आप समाधिस्थ ही रहते हैं। आप का मन ज्ञान मार्ग पर ही चलता है तथा ऐसे मन का प्रत्येक कार्य तपस्या रूप ही है। ऐसे प्राणी सहजावस्था को प्राप्त कर एक नए संसार की रचना करते हैं जिस में अहम् भाव कदापि नहीं होकर भगवन् महिमा की ही लीला करते हैं उस से शेष कोई इच्छा नहीं रहती। यथा——

एक देवः सर्वं भूतेषु गुढ़ः,
सर्वव्यापि सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूतादि वासः,
साक्षी चेता केवलं निर्गुणश्चः॥

योगी लोग किसी प्राणी को भी अपने से भिन्न न मान कर **'वसुधैवः कुटुम्बकम्'** समस्त संसार को अपना कुटुम्ब मान कर उस में क्रीड़ा करता है। स्वामी जी के दर्शन से ही ज्ञात होता है कि किस प्रकार आप सन्त लोगों से प्रगाढ़ स्नेह रखते हैं और उन की प्रशंसा मात्र न कर अभिलाषाएं पूर्ण करते हैं।

'परकार्य दे कारणे सन्तां धारी देह'

अर्थात् सन्त लोगों का अपना कोई उद्देश्य नहीं होता। यथा महाकवि तुलसीदास जी के शब्दों में—

तुलसी सन्त सुअम्ब तरु फूलहि फलहि पर हेत।
इतते वे पाहन हनत, उत ते वे फल देत॥

अर्थात् लोगों के पत्थर रूप दुर्वचन को सुन कर सन्त अमृत रूप मधुर फल ही देते हैं।

एक समय ऐसा था जबकि आप ध्यान भजन में रहने के हेतु पूर्ण शान्ति चाहते थे और उस में किंचित विघ्न होने पर बहुत बुरा मानते थे यथा "एक बार स्वामी जी अपने ध्यान में मग्न थे और हमारे भाई कैलाशानन्द बाहर अपने कार्य में व्यस्त थे। शब्द से प्रभावित हो स्वामी जी बाहर आए और पूछा, "क्या कर रहे हो ?" इस बात का उत्तर हमारे ६० वर्षीय गुरु भाई के पास नहीं था। कितना अधिकार पूर्ण स्नेह था। इस से स्पष्ट होता है कि अपने ध्यान के हेतु आप विशेष शान्ति चाहते थे और अकेले पड़े रहते थे। अपने भजन में विशेष प्रेम के कारण ही निर्जन गुहा में रहना आप ने पसन्द किया। उस में तो बलशाली हिंस्र बनैले पशुओं के अतिरिक्त साधारण जानवरों का बचना भी अत्यन्त कठिन है।

प्रारम्भिक अवस्था जब आप भिक्षा से निर्वाह करते तो एक रोटी कई २ दिन तक काट लेते। कई बार तो अपने समय का पूर्ण लाभ उठाने के हेतु आप जंगली पत्ते और मूल खाकर ही गुजारा कर लेते। ऐसा अप्रिय भोजन भजन के हेतु आपको प्रिय ही लगता। उस समय तो आप यथा प्राप्ति में ही संतुष्ट रहते लेकिन वहां तो यथा प्राप्ति की सीमित रहती। ऐसी कठिन साधना द्वारा ही आप सिद्ध हुए हैं। उस समय शेष समय की साथी आप की दो तीन पुस्तकें होतीं और बनेले पशु आप के पड़ोसी। संसार परिवर्तन शील है, आप उत्तरोत्तर अपना परिवर्त्तन करते। इसी क्रिया का नाम ही अभ्यास है ! आप

इसी अभ्यास में निर्जन स्थान अबाध गति चलते रहे। सम्पूर्ण ब्रह्म को जानते हुए भी आप उसके कार्य और कारण (उत्पति और विनाश) की मीमांसा करते रहते। उसके पश्चात् माया के आवरण को हटा ब्रह्म और माया का अलग २ स्पष्टीकरण करते। अधिक क्या लिखूं आप ने अपने दीर्घ साधन के फलस्वरूप तीनों गुणों का नाश किया और अपनी आत्मा को परम तत्त्व में लीन कर दिया। उस समय आप अपनी साधना में इतने लीन रहते कि आप के दर्शन भी दुर्लभ थे। आप ने इस संसार से विलग रहकर ही अपनी साधना पूरी की है। उस समय आप को सूर्य के उदय और अस्त का कोई ज्ञान नहीं होता था। आप को तिथि और दिवस जानने की आवश्यकता ही नहीं होती थी। पक्षियों के कलरव और गङ्गा के गान के ही समय २ आप अपने मन को झंकृत किया करते थे। गुहा के भीतर और बाहर आप अपने में ही लीन रहते।

कुछ वर्षों की स्थिति अब कुछ ऐसी बदल गई है मानो स्वामी जी नीलकण्ठ रूप हो गये हैं। उन की अवस्था ऐसी हो गई।

त्वमेव बन्धुः च सखा त्वमेव

जिस सरलता से उन्हों ने अपने प्रभु को पाया उसी द्वारा हम उन्हें पाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

जिन की भावना रही जैसे।
प्रभु मूरत तिन देखी तैसे॥

सन्त जन पुष्पों की नाई हैं जिस प्रकार पुष्प में पूर्ण विकसित होने पर उस की सुरभि स्वाभाविक ही सर्वथा पहुंच जाती है और रसिक जन खिचे चले आते हैं इसी प्रकार सन्त के पूर्ण ज्ञानी होने पर उस की ख्याति की आवश्यकता नहीं रहती बल्कि सम्पूर्ण विश्व स्वयमेव ही उस से अवगत हो जाता है। इस का प्रमाण निम्नांकित घटना से लगाया जा सकता है।

"स्वामी जी का नाम सुन कर हरिद्वार में आया हुआ, मानसिक स्थिति (Brain Test) देखने वाला वैज्ञानिक दल गुरुदेव के पास आया और उन्हें सादर प्रणाम करके अपना उद्देश्य निवेदन किया। आप ने उन की इच्छा सहर्ष स्वीकार की और मुस्कराते हुए कहा था कि हमारी तो आंतरिक और वाह्य अवस्था एक ही है ज्ञान ही समाधि रूप है।" मन तो गुणातीत हो जाता है तो उस की स्थिति क्या देखी जा सकती है? योग क्रिया द्वारा तो आप ने सत्य गुण का भी नाश किया है वे लोंग वैज्ञानिक तो केवल शुद्ध और सत्य का ही मान कर सकते हैं। स्वामी जी का रहन-सहन दर्शन-स्पर्श से भी पता चलता है कि यें गुणातीत पुरुष हैं। आप की दृष्टि भी इसी बात की प्रतीक है। Brain Testing Staff उन की मानसिक परीक्षा कर धन्य २ कह उठा और निर्णय दिया कि हमारे द्वारा देखे हुए बहुत से सन्तों में से स्वामी जी महान् आत्मा हैं जिन की स्थिति गम्भीर है। स्वामी जी के प्रभाव और विभूति के लिए अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं, पाठक इतने से उन के ज्ञान का अनुमान कर सकते हैं। आप के स्नेह में कुछ ऐसा आकर्षण है कि गृहस्थ जन भी आप के सान्निध्य में रह कर अपने बच्चों का स्नेह भी भूल जाते हैं। धन्य है प्रभु!

आप का प्रेम। यही प्रेम आप में योग्य है। आप के इस प्रेम का वर्णन कैसे किया कि उस का स्मरण करके ही मेरे मन में हिलोरे उठने लगते हैं। कंठ रुक जाता है। लेखनी रुक जाती है। जिन लोगों ने आप को देखा भी नहीं-अन्य लोगों की वार्ता द्वारा ही आप की ओर स्वाभाविक आकृष्ट हो जाते हैं। पत्र व्यवहार द्वारा ही वे आप को शिष्यत्व ग्रहण करना अपना सौभाग्य समझते हैं। आप किसी को निराश नहीं करते। यह गुण आप में बचपन से ही विद्यामान है। अतएव पत्रों द्वारा ही भगवद् नाम में अपनी शक्ति का संचार कर उन की अभिलाषा पूर्ण करते हैं। ऐसे आदर्श ज्ञानी महात्मा का आश्रय हमारे लिये महान् गौरव की बात है। अनेक सेवकों ने आप के लिए आश्रम आदि बनाना चाहा किन्तु आप को ऐसा रुचिकर नहीं हुआ और न ही अपनी गुहा तक सड़क इत्यादि की व्यवस्था को ही अच्छा समझा, जिस से गुहा-मार्ग पर आवागमन अत्यधिक बढ़ जाये। सड़क एवम् आश्रम की स्थाई व्यवस्था को आप आडम्बर ही मानते हैं। अतः इस हेतु आप सर्वदा मौन रहते हैं। भगवान् की कृपा से ही आप अकार्य वृति में ही अपना निर्वाह करते हैं। आप के आदर्श धन्य हैं। विचारणीय बात है कि आप के धनाढय शिष्यों द्वारा आया हुआ धन भी आप रोग-ग्रस्त और अशिक्षित जनता की सेवा के निमित्त ही प्रयोग करते हैं। ऐसी अनेकों घटनायें हैं जिन में आप धन के हेतु उदासीनता ही प्रकट करते थे। ऐसी ही एक सिद्ध बाबा से आप की स्मरणीय भेंट निम्नांकित है।

"केरल देश के एक सिद्ध साईं बाबा आप के दर्शनों के निमित्त गुहा में आये। खूब प्रेम पूर्वक वार्ता हुई। साईं बाबा आप से

प्रभावित हुए बिना न रह सके और आप को प्रसन्न करने के निमित्त धन देना चाहा। साईं बाबा के पास 'प्राप्ति' सिद्धि थी। साईं बाबा उदास हो चले गए।"

"अगले दिन साईं बाबा फिर आये और लगे स्वामी जी से भक्ति वार्ता करने। एकान्त में खूब हार्दिक बातें हुईं और साईं बाबा प्रेम सागर में डुबकियां लगाने लगे। उसी के फल स्वरूप साईं बाबा ने अपनी सिद्धि से गुरुदेव के गले में नीलम-मुक्ताओं की एक माला पहना दी और आसन के नीचे सौ २ के नोटों का पुलन्दा भी रख दिया। ऐसी स्थिति में स्वामी जी ने भी साईं बाबा को निराश करना उचित नहीं समझा और परोक्ष रूप में दिया हुआ साईं बाबा का धन स्वीकार कर लिया। साईं बाबा प्रसन्नता से भक्ति भाव में प्रफुल्लित हो स्वामी जी की आज्ञा पा कर चले गये। तदनन्तर स्वामी जी ने हम से सब कुछ स्पष्ट किया और समझाया कि इस प्रकार आया हुआ धन लौटाया नहीं जा सकता अपितु सेवा-कार्यों में ही लगाया जाना चाहिये।"

ऐसी अनेकों घटनायें हैं जिन के द्वारा स्वामी जी की धन के प्रति उदासीनता प्रकट होती है। माया की सत्ता आप के समक्ष तो तुच्छ है। माया जाल में आप नहीं पड़ते और न आप उस में रुचि रखते हैं। आप त्याग की साक्षात् मूर्ति हैं। साईं बाबा से प्राप्त हुआ धन आप ने उसी समय उपस्थित-जनों में बांट दिया जिस में से मुझे भी सौ रुपये के एक नोट की प्राप्ति हुई।

इतिहास की एक घटना है कि एक सम्राट् अपनी स्त्री के हाथों

से रोटी बनवा कर खाता। एक बार स्त्री के हाथ जल जाने पर उसने असमर्थता प्रकट की, जिस पर राजा ने उत्तर दिया, "प्रजा का धन व्यय कर हम नौकर नहीं रख सकते। हमारे निजी कार्य के लिये प्रजा का धन व्यय करना निषिद्ध है।"

बिल्कुल ही उपरोक्त घटना के अनुरूप ही स्वामी जी अन्य लोगों के धन को अपना नहीं समझते और न ही उस के प्रति लालायित ही होते हैं।

आप के विचार बड़े गहरे हैं। बचपन में ही आप परमार्थ लाभ को समझने लगे थे। उस के हेतु ही आपने घोर तपस्या का आलम्बन लिया। कोई भी सांसारिक ज्ञान आप से रह नहीं गया। सत्य ज्ञान द्वारा ही आप ने यह सब कुछ प्राप्त किया।

यद्यपि माया के प्रति आप किंचित प्रेम नहीं रखते तथापि भक्तों द्वारा आप को भेजे हुए धन का प्रयोग भी आप यथाविधि ही करते हैं। प्रेम पूर्वक भेजा भक्तों का धन आप प्रेम पूर्वक लौटा भी देते हैं। कोई ऐसा शिष्य जो धन की समर्थ नहीं रखता तथापि गुरु सेवा के निमित्त जो धन भेजता है, उन का धन लौटाना उचित ही है। मैं ने स्वयं कई बार गुरुदेव की आज्ञा पा भक्तों को धन लौटा दिया है। ऐसी बातें तो आप के अन्तर्यामी होने की प्रतीक हैं। महात्माओं में ऐसी ही महत्ताओं का संकलन होता है आप की उज्ज्वलता से ही धर्म उज्ज्वल होता है जिस से समाज प्रकाश पाता है।

इस संसार में आप जैसी महान् आत्मा का अवतरण जगत्

कल्याण की सूचना है। आप ऐसे महापुरुष ही इस संसार की माया का आवरण उतार कर उसे वास्तविक रूप में दुनिया को दिखाते हैं और सत्य के प्रमाणुओं के द्वारा अमृत की वर्षा करते हैं जिस के द्वारा पृथ्वी का भार रूप गंदगी सब धुल जाती है। आप जैसे महात्मा के द्वारा धर्म शान्ति का स्थापन ही विश्व शान्ति का मूल स्रोत है। इस को एक सीमा में बांधना मानव बुद्धि से परे है।

उल्लेखनीय है कि आप का शिष्य आप के अनुग्रह से ही कुछ लिखने में समर्थ हुआ है।

सत्संग

गुरु उपदेश का नाम ही सत्संग है अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति का नाम सत्संग है। सत्संग थोड़ी देर का हो वह अनन्त फलदायक है। सत्संग के बिना साधन एक कौड़ी का भी नहीं। वशिष्ठ जी के सत्संग विश्वामित्र की तपस्या से अधिक महत्त्व के थे। सत्संग के समक्ष ब्रह्मा, विष्णु और महेश की भी कोई शक्ति नहीं। ब्रह्मविद् और ब्रह्मनिष्ठ अभ्यासी पुरुष ही इस पथ के यथार्थ गुरु हैं। गुरु ही शिष्य की उपेक्षा अधिक उत्तरदायी होता है अतएव गुरुत्त्व की भी कसौटी होती है। तपोनिष्ठ और अनन्त गुण विभूषित गुरुदेव पात्र विशेष को ही उपदेश देते हैं। सद्गुरु जैसे दुर्लभ है ऐसे सद्पात्र भी सुलभ नहीं।

हमारे स्वामी जी योगी के लिए तो योग का ही मार्ग बलताते हैं। योग-पद्धति कुछ अगम है यथा—

राम नाम सब कोई कहे दशरथ कहे न कोय।
जो दशरथ एके कहे कोटि यज्ञ फल होय॥

यह प्रत्येक जन के लिए सम्भव नहीं यथा—

प्रभु कृपा जाहि पर होई।

वह ही योग उत्तम है,जिस के अभ्यास से आत्मा और अनात्मा का ज्ञान छिपा नहीं रहता। आत्मा का वास्तविक परिचय केवल मात्र योग द्वारा ही सम्भव है किसी अन्य साधन से नहीं। योगबल से जीवन मुक्ति का आनन्द लिया जा सकता है केवल यह ही अपने संकल्प से वह संसार भी समस्त वस्तुओं को अपने वश में कर सकता है।

आप सर्व साधारण को साधारण उपायों से ही उपदेश देते हैं। वह भी इतना हृदयग्राही होता है कि उस द्वारा भी सत्य दर्शन हो जाते हैं। गुरु कथन केवल कथा ही नहीं, वह क्रिया का एक अङ्ग होगा। श्रवण की अपेक्षा आप की आज्ञापालन की ओर विशेष ध्यान देना ही विशेष लाभदायक हो सकता है। केवल मात्र सत्संग अथवा साधु संग की ही रटन कोई लाभ नहीं पहुंचा सकती। साधन की प्रायः बातें मन के हेतु ही हुआ करती हैं। इसी लिए कहा है :-

मनो हि मनुष्याणाम् कारणं बन्धमुच्यते

बन्धन और मोक्ष का कारण मन ही है। जिस व्यक्ति नेउस गुरु उपदेश से मन के तीनों दोषों को मिटा डाला है उसी ने पूर्ण लाभ उठाया है। इस लिए हमें समझ लेना चाहिए कि मन क्या वस्तु है? जिस को शुद्ध करके हम इष्ट की प्राप्ति कर सकते हैं। एक ओर तो मन की कोई सत्ता नहीं और दूसरी ओर वही सर्वे सर्वा है। मन की सत्ता इस लिए नहीं क्योंकि इस का अपना कोई अस्तित्व नहीं है। केवल मात्र इस का गुरु (पंच तत्त्व सम्मिश्रित) रूप ही निश्चित है। मन सर्वे सर्वा इस लिए है कि वह हमारी समस्त इन्द्रियों का राजा है।

इस प्रकार हमारी इन्द्रियों को मन की आज्ञानुसार कार्य करने पड़ते हैं।

वास्तव में मन प्रकृति की शक्ति मात्र है। मन इस बात का साक्षी है कि प्रकृति अपनी प्रकृति में अपनी सत्ता बना लेती है। लेकिन आज कल के शिक्षित भोग भी ऐसी वस्तु की तुष्टि के हेतु जिस का अपना कोई अस्तित्त्व ही नहीं, अपना जीवन तक भगा देते हैं। और उसी में अपने आप को धन्य मानते हैं। मन के जिस अस्तित्त्व को जान, वे ऐसा करते है, वे हैं सत्य के अनेक प्रतिबिम्ब जो हमारे मन के ऊपर पड़ते हैं यदि ऐसा न होता तो परमात्मा की व्यापकता कहां होती ? संसार अरुचिपूर्ण होता। कैसा सुन्दर जाल है कि बहुत कम प्राणी उस के बन्धनों का अनुभव करते हैं।

जीव और ईश्वर की सृष्टि मन ही ने की है। अतएव मन ऐसी तुच्छ वस्तु नहीं कि जिस का हम विचार ही न करें। मन आत्मा का इतना प्रतिरूप है, मानो आत्मा ही है। प्रकृति की व्यापकता में मन ही संकल्प विकल्पों का केन्द्र है। अन्तर्लीनता में मन आत्मा में सम्मिश्रित हो जाता है।

किसी कवि ने कहा है—

मन के हारे हार है मन के जीते जीत।
देखो रे तुम बांवरा मन ही की प्रतीत॥

मन की दो धारायें मानी जा सकती हैं। निम्न गति ऊर्ध्वगति जन मब इन्द्रियों का अनुकरण करता है तो उन्हीं की तुष्टि के लिए

प्रयत्न भी करता है। इस का यह रूप निम्नगति का है क्योंकि ऐसी अवस्था में मन अपनी वासना ही पूरी करता है। जिस प्रकार द्रव्य नीचे की ओर ही बहते हैं बिल्कुल उसी प्रकार मन बहुधा निम्नगति की ओर ही अग्रसर होता है। ऐसी स्थिति में मन कभी भी तृप्त नहीं हो सकता अपितु वह तो बुद्धि में भी विकार उत्पन्न कर देता है। यहां तक कि मन इतना बलिष्ठ हो जाता है कि आत्मा को दुर्बल बना हिंसात्मक कार्यों से भी नहीं घबराता।

इसके विपरीत जब मन बुद्धि के सहारा से गतिमान होता है तो यह निम्नगति की ओर न जा कर ऊर्ध्वगति द्वारा आत्म-विकास ही करेगा।

महाराज जी का कथन है कि पहले यह देखना चाहिये कि मन किस ओर झुकता है। मन का आधार प्राण है अतएव मन के नियंत्रण व प्राणों के संतुलन की एकमात्र प्रक्रिया प्राणायाम ही है। ऐसी क्रियाओं में त्रोटक और मुद्राओं में खिचड़ी विशेष है। इसी हेतु गीता में भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं "आत्मा को बुद्धि से श्रेष्ठ जानों और बुद्धि को मन में से। मन को बुद्धि द्वारा परीक्षा करके उस की काम रूप दुर्ज्ञेय गति को रोकना चाहिए और मन को पतन के गर्त से बचाना चाहिये।" सत्य है यदि हम ने मन को प्रकृति से विलग नहीं माना तो हम आत्मा का अभ्यास कैसे कर सकते हैं। जिस प्रकार बादलों से सूर्य का प्रकाश बन्ध जाता है बिल्कुल उसी प्रकार मन अपना आवरण आत्मा पर डाल उस का सत्यानाश नहीं होने देता। इस भ्रम को समझ लेना चाहिए। गीता के तृतीय अध्याय में भगवान् ने

मन का विस्तृत स्पष्टीकरण किया है कि वास्तवगति बुद्धि द्वारा ही जगाई जा सकती है।

स्वामी जी का मत है कि योग से ही आत्मा की प्रत्यक्ष पहचान हो सकती है। ऐसे ज्ञान से अहम् भाव तो जाता ही रहेगा, साथ २ संसार के मिथ्या ज्ञान का भी आवरण हट जाएगा। आप दृष्टांत देते हुए कहते हैं कि विकृत आकाश से ही वायु की उत्पत्ति होती है किन्तु आकाश और वायु में महान् अन्तर है। एक स्थूल रूप है तो दूसरा सूक्ष्म रूप। वायु के नाश होने से जिस प्रकार आकाश का नाश नहीं होता, उसी प्रकार आत्मा और शरीर का सम्बन्ध है। जिस प्रकार वायु विनष्ट होकर अपने उत्पादक आकाश में ही लीन हो जाता है ऐसा ही शरीर विनाश के पश्चात् अपने उत्पादक पंचतत्त्व में ही समा जाता है। इसी प्रकार आगे होते हुए पंचतन मात्रा के द्वारा महातत्त्व में ही जा कर मिल जाता है जिस को हम परम तत्त्व अथवा परमात्मा कहते हैं। परम तत्त्व के दो मुख्य अंश हैं विद्यांश और अविद्यांश। विद्यांश में पंचतन्मात्रा पंच महाभूत और पंच तत्त्व उपांग हैं तथा अविद्यांश में कारण शरीर, लिङ्ग या सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर उपांश हैं। स्थूल शरीर का कभी नाश नहीं होता अपितु कार्य रूप से कारण रूप में परिणत हो जाता है। विद्यांश और अविद्यांश के उपांश परस्पर एक दूसरे के कार्य और कारण आप ही हैं। इसी के बल पर सृष्टि आरूढ़ है। महातत्त्व में प्रकृति और पुरुष दोनों के बीज हैं। एक सत्य है तो दूसरा असत्य। इसी प्रकार सृष्टि प्रकृति के साथ फैल गई है। Positive और Negative का मेल होता है। सत्य के अतिरिक्त मिथ्या भी सत्य है क्योंकि उस

का कारण यही है प्रभु कृपा से हम कार्य और उस का कारण (उत्पत्ति) समझ गये। सब ब्रह्म है परन्तु फिर भी ब्रह्म सर्वोपरि है।

आगे चलते हुए गुरुदेव कहते हैं कि जैसे द्रष्टा दृश्य से अलग है उसी प्रकार हमारे मन और बुद्धि दृश्यमान हैं और हम उस से अलग हैं। मन में आने वाले संकल्प हम नहीं हैं परन्तु चैतन्य रूप ही हम हैं। हम वह शरीर नहीं, जिसे अहंकार है। जड़ में वही है जड़ भी वही है। अतः सब कुछ मिथ्या नहीं। अज्ञान में भी जो मैं कही जाती है तनिक विचारिये वह किस द्वारा कही जाती है? गुरु कृपा से ही ऐसा ज्ञान हो पाता है जिस से हम सत्य और असत्य का मान न करते हुए भी आत्मा का वास्तविक रूप देख पाते हैं। ज्ञान के हेतु ज्ञान ही आवश्यक है।

परमात्मा के रहस्यों को समझना प्रकृति के वश की बात नहीं। जिस प्रकार आकाश तत्त्व से ही क्षणिक उत्पत्ति है। ऐसे ही वायु का गुण स्पर्श है। अग्नितत्त्व का गुण चक्षु हैं। इस प्रकृति रूप चक्षु से परमात्मा को देखना कठिन है। भौतिक शरीर के लिए वह ज्ञान कुछ असम्भव है यदि कोई उपाय है तो वह है गुरु कृपा। जिस प्रकार अर्जुन को भगवान् कृष्ण ने अपना स्वरूप दिखाया था।

अन्ततः खोज शान्ति की है, शान्ति ! शन्ति !! शान्ति !!!

पंचमहाभूत——पंचतन्मात्रा——
——कारण शरीर
लिङ्ग शरीर
1
महातत्त्व
2
पंच तत्त्व
विद्या
3A
B
स्थूल शरीर
अविद्या
3B
आदि पुरुष
आत्मा
जीव आत्मा
3C
शरीर
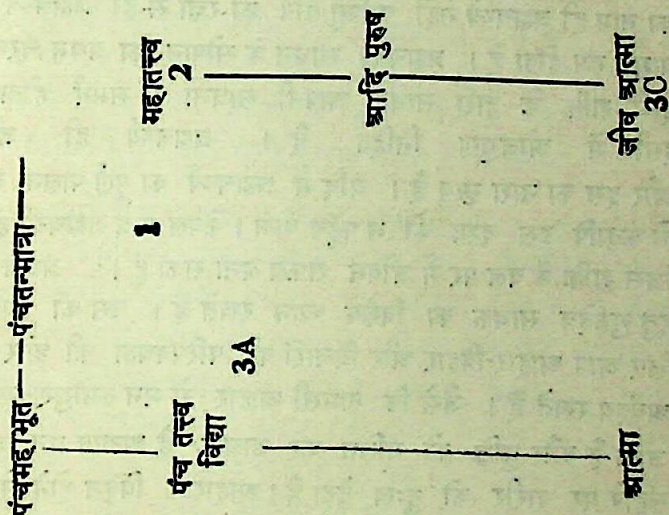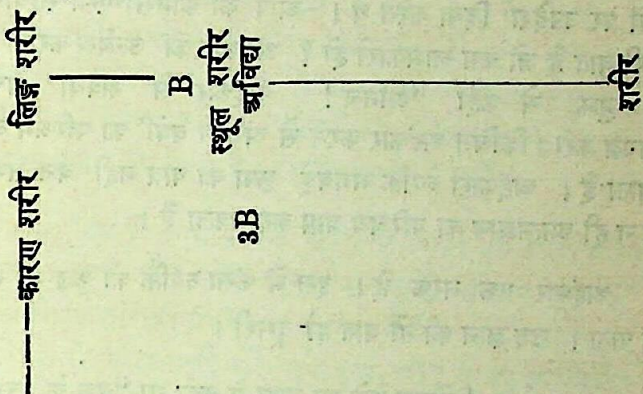
गुरुदेव मुझे मानसिक विश्लेषण के साथ २ बहुत से अन्य विषयों पर उपदेश दिया करते थे। आप की कौनसी ऐसी साधारण सी भी बात है जो कम लाभकारी हो ? अहंकार का उल्लेख करते हुए आप मुझ से कहो "अनिल ! अहंकार से सर्वथा बचने का प्रयत्न करो। किंचित् अहंकार करने से अनेकों वर्षों का परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। अहंकारी व्यक्ति भगवद् कृपा का पात्र नहीं बन सकता और न ही आत्मज्ञान का परिचय प्राप्त कर सकता है।

अहंकार एक नरक है। इस में फंसा व्यक्ति को कुछ भी नहीं सूझ पाता। उच्च ज्ञान की तो बात ही दूसरी।

ब्रह्मचर्य्य का निर्देशन देते हुए आप ने कहा था "ब्रह्म के जानने का नाम ही ब्रह्मचर्य्य नहीं अपितु वीर्य की रक्षा से ही ब्रह्मचर्य्य का यथार्थ रूप होता है। ब्रह्मचर्य्य साधन के सोपान का प्रथम चरण है इसी शक्ति के द्वारा साधक अपनी साधना में समर्थ होता है। इसी में ओजगुण निहित है। ब्रह्मचर्य्य ही जीवन और इस का नाश मृत्यु है। यदि मैं ब्रह्मचर्य्य का पूर्ण पालन करता तो कदापि इस दशा को न पहुंच पाता। केवल मात्र ब्रह्मचर्य्य ही है, जिस शक्ति के बल पर मैं जीवन सफल बना सका हूं।" ब्रह्मचर्य्य के हेतु गुरुदेव साधक का विशेष ध्यान रखते हैं। उस की पूर्णता के लिए आप आहार-विहार और विचारों की परिपक्वता की ओर दृष्टि अवश्य रखते हैं। जैसे कि तामसी आहार से मन तमोगुण-युक्त हो जाता है और बुद्धि को मलिन कर डालता है अतएव मन, बुद्धि के सहारे पर शरीर को दुःख देता है। आहार के विकृत होने से जिस प्रकार शरीर दुःखी होता है उसी प्रकार अपरिपक्व विचार (वासना)

के रहते हम साधना पूरी नहीं कर सकते। ऐसी अवस्था को स्वामी जी कभी क्षमा नहीं करते। हम ने प्रायः देखा है कि उन की दृष्टि स्त्री की ओर कभी नहीं उठती। इस विषय में आप पूर्ण सूरदास हैं। आप के मतानुसार कंचन (धन) व्यवहार इतना बुरा नहीं लेकिन कामिनी चिंतन सर्वथा वर्जित है। इन्द्रिय सुख से पार ही दिव्य आनन्द प्राप्त हो सकता है। विषय वासना से नहीं।

"हम को संन्यास देने से पहले स्वामी जी ने दो बजे रात को मुझे बुलाया और निर्देश दिया "कल तुम्हें संन्यास देना था किन्तु तुम्हारे विचारों की शिथिलता को देख मैं ऐसा न कर सकूंगा। किसी भी स्त्री से लालसापूर्ण बातें मुझे सह्य नहीं" मैं प्रभु की अवज्ञा न कर सका। अपनी सफाई की मैं क्या सफाई देता। केवल इतना कह पाया "मैं प्रभु को कैसे दृढ़ता बंधाऊं। यदि आज्ञा हो तो मैं आयु पर्यन्त स्त्री जाति का मुंह न देखूंगा।" स्वामी जी को मुझ पर शंका नहीं थी बल्कि वे दृढ़ को परिपक्व बनाना चाहते थे बोले "स्त्री देखना क्या बात करना भी बुरा नहीं परन्तु भावना पवित्र होनी चाहिए।"

दूसरे दिन संन्यास तो हो ही गया परन्तु उन का तथा कथित निर्देश आज भी मेरे हृदय में से सचेत करता है। कदाचित् इसी बल पर मैं अपनी साधना में लीन हूं। गुरु महाराज साक्षात् भगवान् हैं हम किसी प्रकार आप की इच्छा के प्रतिरूप कार्य नहीं कर सकते। आप की युक्तिपूर्ण बातों से ही मुक्ति का निर्देश मिलता है। ब्रह्मचर्य के पालन के हेतु स्वामी जी गृहस्थ जनों को भी ब्रह्मचर्य के पूर्ण व्रत का आदेश देते हैं, यथा वंश वृद्धि के हेतु एक संतान पर्याप्त है, तदनन्तर शीलव्रत ले लेना चाहिये क्योंकि ब्रह्मचर्य से ही परमार्थ लाभ प्राप्ति

हो सकती है। सारांश यह है कि ब्रह्मचर्य पालन से ही दिव्य-आनन्द का उपभोग किया जा सकता है।

प्रायः देखा गया है कि साधुओं का हृदय जन-साधारण से भिन्न होता है। क्यों, वह विशिष्ट गुणों से युक्त होता है और इस के विपरीत जन साधारण के हृदय पर कपट का आवरण पड़ा रहता है। लेकिन सत्यरूप परमतत्व का ज्ञान सत्य द्वारा ही सम्भव है अतएव उसके हेतु सन्तों का धर्म अनुकरणीय है। कपट का परित्याग किए बिना सत्यग्रहण नहीं हो सकता अर्थात् हृदय की शुद्धि के बिना वहां सत्य का प्रवेश असम्भव है। कपट के परित्याग की शक्ति भी साधारण हृदयों में नहीं है परन्तु उस से बचने का प्रयास प्रत्येक प्राणी कर सकता है। जैसे गलती तो हर प्राणी से हो सकती है क्योंकि प्रत्येक आदमी के सिद्धांत अलग-अलग हैं। लेकिन अपनी भूल को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। हमें किसी को पराजित करके अपने को सफल नहीं समझना चाहिये। यदि किसी व्यक्ति को धोखा देकर अथवा छल से कोई वस्तु प्राप्त की जावे तो कौन कौशल का कार्य है। इससे बढ़ कर और कौनसा मूढ़ ज्ञान हो सकता है कि अन्य प्राणी को अपने भिन्न मान लिया जावे जबकि समस्त संसार एक ही तत्व के अणु रूप हैं। परन्तु इस को जानने के हेतु शुद्ध हृदय आवश्यक है। हम ने गुरुदेव के निकट रह कर ही यह ज्ञान प्राप्त किया है कि किसी भी समय अथवा अवसर पर सत्य से किंचित् भी विलग नहीं होना चाहिये। यह संसार कर्मक्षेत्र है। इस क्षेत्र के कर्मानुसार ही प्राणी सुख और दुःख के रूप में आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है। हमारे कर्मों का फल ही हमारे बन्धन और मुक्ति का कारण बनता है।

इसी लिए कहा है—'कर्मणां गहना गतिः' साधारण सी बात के लिए जब हम झूठ का आश्रय लेते हैं तो देखिये किस प्रकार एक बार झूठ बोलते हैं इसी प्रकार झूठ के अभ्यासी से हो जाते हैं और छलपूर्ण नीति का आरम्भ होता है अतएव जब किंचित झूठ का ऐसा फल हो सकता है तब किसी भी परिस्थिति में सत्य का साथ नहीं छोड़ना चाहिए। सत्य-ग्रहण से पूर्व हृदय सरल होना चाहिए। इसी लिए स्वामी जी बच्चों को कई गुणी लोगों की अपेक्षा अच्छा समझते हैं और कभी २ तो आप स्वयं भी अपने आप को बच्चे की भान्ति प्रदर्शित करते हैं। सरलता का उल्लेख करते हुए गुरुदेव ने एक बार कहा था "यह सरलता का ही रहस्य है कि भगवान् कृष्ण के सम्मुख गोपियां नग्न हुईं। उन के हृदय में अपने और गोपियों में कोई भिन्नता नहीं थी बल्कि वे एक ही रूप समझते थे।

"अतएव सत्य ज्ञान के बिना सत्य रूप का आभास नहीं हो सकता। फिर इस के हेतु हमें विशेष दुःख भी उठाना पड़ता बल्कि दैनिक कार्यों में सत्य बोलने से धीरे २ हमें सत्यज्ञान होने लगेगा। सत्य ही धर्म और कपट में विनाश। सत्य में ही विजय है और कपट से पराजय। सत्य ही जीवन है, कपट में मृत्यु।

"सत्य में ईश दृश्यमान होते हैं" ऐसे कहकर स्वामी जी भाव विभोर हो गये। हम मन ही मन उन की शत २ प्रशंसा करने लगे और विचारने लगे कि इन सब बातों का ज्ञान आप ही हमें कराएंगे। आप ज्ञान के भण्डार हैं और हम अज्ञानी और अबोध। आप सर्वज्ञाता हैं और हम निद्रा में हैं। आप ही हमारी जीवन नैया को पार लगाने

वाले हैं। आप के तथा कथित उपदेशों से हम अपने आप को सजग अनुभव करते हैं। धन्य प्रभु आप की शक्ति।

विशिष्ट गुहा

बनों में आकर दिव्य ज्योति ने डाला ऐसा प्रकाश।
अपनी दैवी शक्ति से आनन्दित कर दिए सब आस पास ॥

स्थान-विशेष का नाम ही तीर्थ होता है। किसी महापुरुष के विश्राम-निवास और क्रीड़ाक्षेत्र ही विशेष महत्त्व रखते हैं जैसे पंचवटी, चित्रकूट और कुरुक्षेत्र, इसी प्रकार विशिष्ठ गुहा का महत्त्व भी आज से सहस्रों वर्षों पूर्व का है। महामुनि विशिष्ठ की यह साधना गृह है परन्तु काल की धूल ने इस पर आवरण डाल ख्याति से वंचित कर दिया संसार की दृष्टि से ओझल हो गया। यह बात स्मरणीय है कि महान् आत्माओं का स्थान प्रकृति भी किसी निकृष्ट प्राणी को प्रदान नहीं करती। आश्चर्य की बात है किस प्रकार हमारे गुरुदेव ने समस्त भारत में इस स्थान को ही अपनी साधना का श्रेय प्रदान किया। आज तो यह गुहा एक दिव्य ज्योति का केन्द्र है। इस प्रकार आज से सहस्रों वर्ष पूर्व का महत्ता क्षेत्र होते हुए भी स्वामी जी से इस स्थान को तीर्थ होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मेरे लिये तीर्थ का विशेष महत्त्व है। इसी लिए उल्लेख कर रहा हूं।

साधक अपनी साधना के निमित्त उपयुक्त स्थान ही ढूंढ़ता है। इसके हेतु किसी नदी का किनारा-पर्वत की कन्दरा अथवा गुहा इत्यादि में एकान्त एवम् शान्त वातावरण मिल सकता है। अन्य स्थानों की अपेक्षा गुहा का विशेष महत्त्व क्योंकि उस में भिन्न २ ऋतुओं का कोई प्रभाव नहीं मिल सकता। ऐसी एक उक्ति शास्त्रों में भी मिलती है

धर्मस्य तत्वं निहितं गुहयाम्।

इस का वास्तविक अर्थ तो हृदय रूप गुहा से है लेकिन वाह्य अर्थों में तो 'धर्म का तत्त्व गुहा में' ही माना जा सकता है। सत्य ही तो है। गुहा ही एकान्त और साथ शान्त वातावरण से युक्त होती है। गुहा की निस्तब्धता होती है। एकाग्रता के बिना साधना असम्भव है। एकाग्रता समाधि का ही एक रूप है। इसी लिये दक्षिण से उत्तर देश में आने पर स्वामी जी ने अपनी साधना के निमित्त इस गुहा को ही उपयुक्त समझा।

यह विख्यात गुहा ऋषिकेश से लगभग चौदह मील दूर है। देवप्रयाग होते हुए बद्री नारायण जाने वाली मोटर सड़क के किनारें पर स्थित है। इस की सौंदर्यता इस बात से स्पष्ट होती है कि गंगा जी इस से कुछ ही गज़ की दूरी पर बहती है। वर्षाऋतु में जब नदी में बाढ़ आती है तो ऐसा प्रकट होता है मानो गंगा जी गुहा के चरण स्पर्श का प्रसार कर रही है। पहले पहल जब स्वामी जी आए, गुहा का द्वार जंगली जानवरों से बचने के लिए घास फूस से बन्द कर दिया जाता था। मैं ने वह स्थिति नहीं देखी। मेरे आने पर गुहा द्वार पत्थरों

और मिट्टी से बना था। लेकिन गत वर्ष की गंगा की बाढ़ उसे अपने ही साथ ले गई। अब वह स्थान सीमेन्ट द्वारा पक्का बना दिया गया है। गुहा के बाहर दो पक्के आसन भी बताये हैं जिन में से एक तो स्वामी जी के अपने लिए है और दूसरा बात करने वाले आगन्तुकों के निमित्त प्रयोग में लाया जाता है। गुहा के सम्मुख खुले मैदान में ही सत्संग आदि होते हैं। पौराणिक कथाओं से ज्ञान होता है कि यह गुहा तेरह मील लम्बी थी। स्वामी जी ने भी उस का एक मील लम्बा रूप देखा था। समय २ पर गंगा जी ने ही इसे लघुत्तम रूप दे दिया जान पड़ता है। तत्पश्चात् स्वामी जी ने भी अपने प्रयोग के निमित्त गुहा के अतिरिक्त शेर को बन्द कर दिया। वर्त्तमान गुहा में पचास व्यक्ति सरलता पूर्वक सो सकते हैं। इस के विशिष्ट गुहा होने का प्रमाण हैं। प्रथम यहां के निकटवर्ती लोगों में यह गुहा विशिष्ठ गुहा नाम से ही प्रसिद्ध है।

लक्ष्मण झूला— श्रीराम बूहा और भरत मन्दिर जहां हों वहां विशिष्ठ नाम की गुहा होने में कौनसी अत्युक्ति है और वशिष्ठ जी यहां न रहे हों ऐसा कौन सा सन्देह है। पुरातन काल में लोग दीर्घायु होते थे फिर ऐसे महामुनि के ऐसे स्थान पर रहने की बात को शंका की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। रावण हत्या के पश्चात् ब्रह्म हत्या का प्रायश्चित करने के हेतु चारों भाई इधर आये थे। इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि महामुनि विशिष्ठ जी की साधना से ही वातावरण घनीभूत हो रहा है। एक सिद्ध की गुहा होने के नाते यह गुहा स्वाभाविक ही शुद्ध वातावरण लिए हुए यह एक सिद्ध गुहा है। गुहा के आगे अर्थात् गङ्गा की ओर श्वेत बालू अपनी शुक्लता प्रसार कर

रहा है। यह बात सत्य है कि पवित्रात्मा के निवास से ही यहां पवित्र वातावरण की रचा हुई। अन्यथा गुहा तो उदासीन भाव से शून्य की ओर निहार रही थी। रामतीर्थ आदि महापुरुष भी इसी गुहा को पवित्र कर गये हैं। गुहा की प्राकृतिक रमणीयता पक्षियों का कलरव भागीरथ गङ्गा का कलकल गान, विशाल शैल शृंगी चूड़ाएं मृग शावकों की भयमिश्रित तांक झांक शीतल मलयज का वहन में स्वभाविक ही मानव अपना आप भूल जाता है। यहीं के विशाल २ ताल तमाल और चीड़ के वृक्षों ने मानो पर्वतों से होड़ लगा रखी हो। यहां प्रत्येक ऋतु के फल फूल और प्राणी विद्यामान हैं। यहां के कन्द-मूल फल से साधारण आदमी अपना निर्वाह कर सकता है। लोगों का अनुमान है। ऐसी वस्तुओं से ही स्वामी जी ने अपना निर्वाह किया। समुदाय किम्वदंती है कि विशिष्ठ जी स्वामी के रूप में अपनी गुहा में विद्यामान हैं। आगन्तुक इस गुहा को स्वर्ग का ही प्रतिरूप मानते हैं। लेकिन इस का महत्त्व तो स्वर्ग से भी कहीं अधिक है जबकि स्वर्ग तो विशेष भक्ति पुण्य-कार्यों के फलस्वरूप ही प्राप्त होता है और इस की प्राप्ति केवल मनुष्य हृदय में सद्भावनाएं रख कर ही कर सकता है। गुहा के शान्त और सुखदाई वातावरण और स्वामी जी के व्यक्तित्व की महानता की अनेक घटनाएं हुई जिन में से एक का उल्लेख नीचे दिया जाता है।

"एक समय पुत्र शोकग्रस्त एक दम्पती यहां आया, जिन का दुःख उन्हें निढाल सा कर रहा था। आप के भक्तिपूर्ण वातावरण और प्रेम में ऐसा लीन हुआ कि अपना शोक पूर्णतया भूल गया लेकिन जब गुरुदेव ने उन्हें प्रस्थान की आज्ञा दी तो उन्हें पुनः अपना शोक स्मरण

हो आया और रुदन करने लगे। स्वामी जी ने यथाविधि उन्हें शक्ति प्रदान घर भेज दिया। ऐसी अनेकों घटनाएं पुराणों में उपलब्ध हैं जिन से देव-स्थानों के महत्त्व का ज्ञान होता है। सात्विक गुणों की विद्यमानता के कारण ही यहां का वातावरण स्वर्ग तुल्य सात्विक है। श्री के. ऐम. मुन्शी तत्कालीन राज्यपाल उत्तर प्रदेश भी यहां आए थे। वे स्वामी की प्रेम वार्ता, भगवद् भजन और गुहा के शान्त वातावरण से अत्यधिक प्रभावित हुए तथा उन्हों ने पत्रिकाओं, समाचार पत्रों और विज्ञापनों द्वारा स्वामी जी और गुहा की ख्याति को पर्याप्त मात्रा में प्रसारित किया। श्री मुन्शी नें बद्रीनारायण तक की अपनी यात्रा में कई महापुरुषों से भेंट की परन्तु हमारे गुरुदेव के विशेष रूप से प्रशंसक थे, ऐसा हमें उनके अपने लेखों द्वारा ही ज्ञात हुआ था।

गुहा के भीतर एक शिवलिङ्ग भी विद्यमान है। हिमालय के वक्ष में हिमनाथ बड़े युक्तियुक्त रूप में शोभायमान हैं। शिवपुराण की कथा के अनुसार इस शिवलिङ्ग में भी तादृश लीला माधुर्य वर्तमान है। ऐसे चमत्कारों की लीलाओं से अब भी ऐसा भास होता है कि शिव जी का रूप प्रत्येक रूप में यहां छाया हुआ है। इस समय गुहा का रूप बहुत ही उज्ज्वल और शान्तिमय है। स्वामी जी को पा कर मानो गुहा उल्लास से भर रहा है। गुहा वर्णन को सीमित कहना इस लेख हेतु आवश्यक है। स्वामी जी के साथ २ उन का निवास-स्थान भी हम अपने हृदय में रखते हैं।

सिद्धि शक्ति

(अघटन घटना)

माया नें किया यह अनन्त भेष.

ज्ञान रूप चोर, चड़ि मिटा यह भेद ।

एक ज्ञान एको रूप दुसरा अज्ञान आधार,

रक्त मांस मिले जब हुआ एकाकार ।

एक ईश्वर अंश जानि आलोक माझारी मुक्त कह लेत

दूजा आधारे परिभिन्न रूप जाने,

याते दुःख सुख में सदा रत ।

जान हे नरेश नाहि शेष और भी है उपरन्त,

किया सन्यस्त जान वह तत्व जो एक भगवान ।।

महापुरुषों की पहचान हम ऐसे मानवों की बुद्धि के परे की वस्तु है। ऐसा जानना कि ये किस ढंग के महात्मा तुलसी दास के शब्दों में :—

सो जानै जो देहि जानाई।
जानत तुमही- तुमही हो जाई।

एक बालक को रति-प्रेम का आभास ही क्या हो सकता है ? इस बात में जनसाधारण तो चक्षुहीन से है। महापुरुषों की परीक्षा की अपेक्षा उन की आज्ञापालन ही हमारे लिए श्रेयस्कर है। स्वामी जी के विषय में भी अनेकों जन श्रुतियां प्रचलित हैं कि स्वामी जी अघटन घटना में सिद्ध हस्त हैं। वास्तव में ये बातें सत्य हैं। लेकिन ज्ञानी व्यक्ति इस क्रिया का प्रयोग भगवान से नहीं करते और न ही इस परोक्ष क्रिया को अन्य को चमत्कार प्रदर्शन के हेतु ही ऐसा करते हैं। हम उन्हें भगवद्भक्त की अपेक्षा एक चमत्कारी महात्मा के रूप में देखने की इच्छा भी नहीं रखते। हम लोग अपने साधन में भी वह साधन कभी नहीं करना चाहते। स्वामी जी का वचन है कि अपने चमत्कार से दूसरे को वश में करना बुद्धिपूर्ण कार्य नहीं। आत्मा की दृष्टि से ज्ञानी लोग निहारते हैं और उस द्वारा आकर्षण उत्पन्न करना उचित नहीं समझते। महात्मा लोग प्रभु पर अधिकार पा कर सर्वस्व देव का रूप बन जाते हैं फिर अहंभाव द्वारा ही सम्मानित होना वे श्रेयस्कर नहीं समझते जिस के हृदय में भगवान का निवास है। उस की कौन सी इच्छा शेष रह जाती है और फिर किस इच्छा की पूर्ति के हेतु उन्हें चमत्कार का आश्रय लेने की आवश्यकता है। महात्मा की

परीक्षा की तो क्या, उन के सान्निध्य अथवा सेवा से उन के स्वभाव को पा सकते हैं। साधक को ऋद्धि सिद्धि के चक्र में पड़ने अथवा उसे जानने की आवश्यकता ही क्या है? जबकि पारमार्थक लाभ को समझता है, एवम् भगवद् भजन के अतिरिक्त उसे वह साधना मिल ही कहां सकती हैं? महापुरुषों से भी अपने कल्याण के हेतु ही ज्ञान लेना चाहिये अतएव उसे सिद्धियों के माया जाल में पड़ने की आवश्यकता ही क्या है। उसे तो अपनी मानसिक उन्नति अर्थात् आचरण में सुख, शांति, सरलता, सहिष्णुता आदि गुणों से सम्पन्न होने एवम् महात्मा के निर्देशन द्वारा दिव्य सम्पत्ति की प्राप्ति के हेतु ही प्रयत्नशील रहना चाहिए। महात्मा के संसर्ग में रह कर भी यदि साधक अपने मन में माया रूप विषय वासना को स्थान दे तो उस के जीवन की महत्ता ही क्या है। साधक को तो अपनी साधना द्वारा एवम् उस से भी आवागमन के बन्धन से मुक्त होकर परम तत्त्व में भी न होने का ही विचार साधना है, घोर परिश्रम के पश्चात् इस सांसारिक चमत्कारों जैसे चांदी को सोना बनाना पानी को लांघ जाना, अग्नि को प्रज्वलित करना और मृत को जिलाना आदि झंझटों में पड़ने से उसे क्या लाभ? ये एक जादूगर के कार्य है, महापुरुष के नहीं। हमने प्रायः देखा है कि स्वामी जी इस ओर कोई रुचि नहीं रखते अपितु सुन कर हंसने लगते हैं। आप तो पूर्ण ज्ञानी और तत्त्ववेत्ता हैं।

महापुरुषों की परोक्ष शक्ति का हम समर्थन भी करते हैं। किसी के कल्याण के हेतु ऐसी शक्ति का प्रयोग भी करते हैं। साधारण शिष्यों के मन में प्रारम्भिक अवस्था में अपने गुरु के प्रति दृढ़ता

नहीं होती। उन के संशय को दूर करने के हेतु परोक्ष रूप से ही अपना अनुग्रह प्रदान करते हैं। हमें चमत्कारपूर्ण बातों को भी मान्यता देनी पड़ती है क्योंकि स्वयं सृष्टि भी एक चमत्कारपूर्ण वस्तु है। अन्यथा इस में कुछ वास्तविकता तो नहीं। यद्यपि इस सृष्टि पर हम अनेकों जीव-जन्तु इत्यादि संसार में प्रत्यक्ष देखते हैं तथापि सद् ज्ञान द्वारा हमें यहां कुछ भी भास नहीं होता। वास्तव में ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। इन प्राणियों को प्रभु का चमत्कार समझो अथवा जीवात्मा का भ्रम ज्ञान अन्यथा परम तत्त्व के अनेक अणुओं के अतिरिक्त शून्य मात्र हैं। कितने आश्चर्य की बात है। सृष्टि के सूर्य और चांद आदि भी चमत्कार पूर्ण हैं। हमें प्रत्यक्ष रूप से सूर्य और चन्द्र गतिमान प्रतीत होते हैं, किन्तु विद्या ज्ञान द्वारा पता चलेगा कि ऐसा नहीं अपितु पृथ्वी स्वयं गतिमान है। इस से बढ़ कर आश्चर्य तो यह है। कि परम तत्त्व के एक अणु को जो रूप होने के पश्चात् परम तत्त्व में लीन होने के हेतु कितने घोर परिश्रम की आवश्यकता है। इस से बढ़कर चमत्कार की और कौन सी बात हो सकती है।

सृष्टि के एक ओर खड़े हो कर सृष्टि के चमत्कारों को निहारिये कि दो दिन के इस जीवन में मानव किस प्रकार मकड़ी का सा जाल बना स्वयं ही उस में उलझा हुआ है। कोई भी अपने स्वरूप को देखने का कष्ट नहीं करता। सब अपनी २ तृष्णा को बुझाने के हेतु कोई हंस रहा है, कोई रो रहा है, कहीं उत्पत्ति की प्रसन्नता और कहीं विनाश का शोक, कहीं उत्थान की मुग्धता और कहीं पतन की उदासीनता, कहीं जन्म का हर्ष, तो कहीं मरण का रुदन, माया का जाल बनाये हैं। कोई अन्य के हेतु दुःख सहता तो कोई सुख का उपभोग कर रहा है। कल

जिस मस्तक को अनेकों मस्तक नत होते थे आज धूल में मिल गये है। कुत्ते मांस नोच रहे हैं। जनसाधारण इस चमत्कार को नहीं समझते। महापुरुष ही इस अभिनय को समझते हैं। तभी तो हाथ के से संकेत द्वारा स्वामी जी बता देते हैं कि इस माया रूप चित्रपट को देखिये, आनन्द उठाइये और शिक्षा भी ग्रहण कीजिये।

कितनी ही आश्चर्य पूर्ण घटनाएं हमारे दैनिक जीवन में हो जाती हैं। लेकिन हम गहरे ज्ञान से नहीं देखते। एक बार मैं एक शिव मन्दिर में गया जोकि एक विशेष अवसर पर सुसज्जित किया हुआ था। भगवान् शिव की मूर्ति में अनेक पुष्प मालाओं के साथ कई सांप भी पहनाए हुए थे। लोग आश्चर्य से कह रहे थे कि मूर्ति पर सत्य रूप में सांप चढ़ाए हुए हैं। मुझे उनके आश्चर्य पर और भी आश्चर्य हुआ कि "जिस सत्य का ये उल्लेख करते हैं उस की सत्ता ही क्या है और जिसे झूठ की मूर्ति कह रहे हैं उन की आशा के विपरीत वह सत्ता पूर्ण है।" किस प्रकार आश्चर्य को आश्चर्य से ही ढक दिया जाता है कि सांसारिक प्राणी वास्तविक को असत्य और सत्य को असत्य मानते हैं। इस आश्चर्य को प्रत्येक प्राणी नहीं देखता इसी लिए भगवान् ने गीता में अर्जुन से कहा था—

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।

आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति,
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥

इसी प्रकार यदि किसी महात्मा द्वारा आश्चर्य शक्ति का प्रयोग हो जाए तो कौन सी अस्वाभाविक बात है। वह अपने सम्मान प्रदर्शन के हेतु ही कर अपने भक्तों अथवा शिष्यों के कल्याण के हेतु ही प्रयुक्त होती हैं। जो का प्रशंसा के उद्देश्य से न हो वह सर्वमान्य होता है। यह बात सत्य है कि यदि हम ऐसा न मानें तो महात्मा बुद्ध, यीशुक्रिष्ट शङ्कराचार्य, गुरुनानक, और रामकृष्ण परमहंस आदि महापुरुषों के विषयक प्रचलित जन-श्रुतियां झूठी माननी पड़ेंगी। ऐसा भी अनेक स्थानों पर होता है कि चमत्कार के बिना नमस्कार नहीं होती। जैसे असत्य से सत्य का प्रकाश होता है, एवम् तुलसीदास के शब्दों में "भय बिना प्रीत नहीं।" अपने भक्तों के लिए ही अनेक महापुरुष अनेक अवसरों पर अपनी शक्ति का प्रयोग करते आए हैं। इस के हेतु वे विशेष प्रयास नहीं करते अपितु उन की इच्छा अनुरूप ही पूर्ण हो जाता है। भक्तों की इच्छा पूर्ति हेतु जो आश्चर्य युक्त कार्य हुए वही सत्य प्रमाणित हुए और उन्हीं को धर्म का आधार मान लिया गया। धर्म वही है जिस को धारण किया जाए। जैसे—

यीशुक्रिस्ट को एक टोकरी रोटी से अनेक टोकरियां बनानी पड़ीं अन्यथा साथ में रहने वालों को क्षुधा से पीड़ित होना पड़ता। महात्मा बुद्ध के जीवन में भी ऐसी घटना हुई कि एक छोटा सा पौधा जल डालने मात्र से फल-फूल से प्रफुल्लित हो गया। इस का कारण यह था कि पूर्णज्ञानी होने पर भी जनसाधारण की धारणा अपने प्रति किस प्रकार दृढ़ की जाती है अतएव उन्हें क्रियात्मक रूप से मान्यता लेनी पड़ी।

ऐसे ही स्वामी रामकृष्ण परमहंस देव को भी स्वामी विवेकानन्द

को विश्वास दिलाना पड़ा था। विवेकानन्द प्रायः भगवान् दर्शन का हठ करते। एक बार जब स्नान के हेतु ठाकुर जी ने गङ्गा का निर्देशन विपरीत दशा की ओर किया तो विवेकानन्द मार्ग में ही जलवृष्टि से भीग गए। वहां कोई गङ्गा आदि जलाशय नहीं था। इस आश्चर्य से प्रभावित होकर पुनः भगवद् दर्शन की इच्छा कदापि नहीं की।

इसी प्रकार यदि गुरु नानक देव के जीवन पर सिंहावलोकन करें तो पता चलता है कि उन का अधिकांश जीवन ऐसी ही विचित्र घटनाओं से भरा पड़ा है।

प्रायः भगवान् मनुष्य रूप में ही महापुरुष द्वारा अपनी लीला प्रदर्शन करता है। यह ख्याति के लिए नहीं, इतिहास स्मरण के लिए नहीं, यह तो धर्म की रक्षा और भक्तों के कल्याण के लिए ही सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न करता है। इसी लिए हमारा दृढ़ विश्वास है कि हमारे गुरुदेव द्वारा भी जो आश्चर्ययुक्त कार्य सम्पन्न हुए हैं, वे भी भक्त उपकारार्थ ही हुए हैं और विशेष उल्लेखनीय हैं। आप का तपोभाव का ज्ञान दर्शन मात्र से हो जाता है। प्रत्येक आगन्तुक की भान्ति हमारे मन में भी पहले पहल गुरुत्त्व के प्रति संशय उत्पन्न हो गया था। मुझे भगवदाज्ञा से गुरुत्त्व की स्वीकृति मिली थी। इतना ही नहीं, हमें तो ज्वलन्त प्रमाण से आप के जगद् गुरु होने की स्वीकृति भी मिली थी। जिस से भविष्य में मैं ने कभी भी अपने मन में ऐसे संशय को स्थान नहीं दिया। मैं प्रयत्न करूंगा कि कुछ प्रत्यक्ष प्रमाण पाठकगण के सम्मुख रखूं ताकि उन के मन में भी कोई संशय न रह जाए।

"गुहा में प्रत्येक शिष्य को कुछ न कुछ सेवा कार्य करना पड़ता है। ऐसा कुछ नियम सा है। एक समय की बात है कि बालानन्द नामक हमारे एक गुरु भाई को गाय के हेतु घास लाना होता था। एक बार जब बालानन्द जी वन में घास काटने गये। वहां किसी आकस्मिक भय से ऐसे भयभीत हुए कि घास काटना भूल गये। उसी समय उन्हें गुरुदेव सड़क पर घूमते दिखाई दिये। उस से उन का भय दूर हुआ और वे सचेत हो कर घास काटने लगे। जब वे घास ले कर गुहा में आये तो अपनी घटना के अनुसार स्वामी जी का हार्दिक धन्यवाद किया। लेकिन जब उन्हें पता चला कि कई वर्षों से स्वामी जी वन में तो कदापि नहीं गये तो बालानन्द जी के आश्चर्य की सीमा न रही।"

उक्त घटना एक संन्यासी से घटित है जो सांसारिक वस्तुओं को मिथ्या मानता है लेकिन गुरु प्रमाण को सत्य रूप में धारण करता है।

"एक बार हमारे एक गुरु भाई (गृहस्थ) इस पुस्तक के प्रकाशक पं० जगन्नाथ जी प्रधानाध्यापक नैशनल हाई स्कूल रन्धावा मसन्दां गुरुदेव से मिलने गये। सांझ को जब स्वामी जी ने इन को प्रस्थान की आज्ञा दी तो उन्हों ने वहीं रात्रि निवास का अनुरोध किया। उन के साथ उन की स्त्री श्रीमती कौशल्या लखनपाल, जोकि एक प्रौढ़ा, सुशिक्षिता और गुणवती स्त्री है, भी थी। अस्वस्थ होने क कारण स्त्री को कई बार बाहर जाना पड़ा। वन की स्थिति से वह अत्यन्त भयभीत हो रही। उसी अवस्था में उन्हों ने एक सैनिकरूप को अपनी सुरक्षा लिए घूमते देखा जिस से वह स्तम्भित रह गई। उन्हों ने बार २ उस

का ऐसा रूप देखा और अलोप होता गया। उस वनले वातावरण से वह आश्चर्य चकित हो रही थी। प्रातः सत्संग में स्वामी जी ने निर्देश दिया "बेटा ऐसी वर्षा ऋतु में, भयङ्कर जीवजन्तु मुंह वाय फिरते हैं, फिर न आना। हमें तुम्हारा विशेष ध्यान रहता है। वैसे तो यहां कई महान् आत्माएं विचरण करती हैं जिन से डर की कोई बात नहीं।" ऐसी आज्ञा को सुनकर वे आश्चर्य चकित रह गए क्योंकि आप का निर्देश रात्रि की घटना से सम्बंधित था।"

"एक बार मैं गुहा से ऊपर की ओर स्कूल को जा रहा था त मार्ग में कुछ ऐसे व्यक्तियों से भेंट हुई जो पूछने लगे "उस महात्मा की गुहा किस ओर है जिस ने हमें बालू से चीनी बनाकर चाय पिलाई थी" मैं ने कहा "गुहा तो वही है परन्तु वहां ऐसा बालू से खांड बनाने वाला कोई सिद्ध नहीं अपितु एक भगवद् भक्त है।" उन्हों ने दृढ़ता से कहा "नहीं वही तो हैं। हम उन से पहले भेंट कर चुके हैं।" ऐसा कह कर वे गुहा की ओर चल दिए और मैं स्कूल की ओर। "मैं ने रेत से खांड बनाने की बात सुनी थी परन्तु आज वह व्यक्ति भी देख लिए जिन के हेतु ऐसा किया था" गुरु की ऐसी कई चमत्कार पूर्ण बातें साधकों को भी आश्चर्य में डाल देती हैं। लेकिन जन-साधारण के लिए चाहे यह आश्चर्य हो, साधक को इस में सत्य रूप ही भास होता है। प्रारम्भिक रूप में तो हमारे लिए भी यह आश्चर्य युक्त बातें ही दृढ़ता का एक मात्र आधार थीं। लेकिन अब तो हम संसार को भी हास्यास्पद मानते हैं। उस समय की स्वयं से घटित घटना का उल्लेख करता हूं। "उस समय मैं और गुरुदेव दो ही प्राणी गुहा में रहते थे। अपनी आवश्यकता की वस्तुएं मैं

ऋषिकेश से जाकर ले आया करता था, जो एक मास के लिए पर्याप्त होतीं। ऐसे आवश्यकतानुसार वस्तुएं लेने मैं ऋषिकेश गया। अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त मैं ने मंजन का डब्बा भी खरीद लिया क्योंकि मंजन समाप्त हो गया था।

जब सामान लेकर वापिस आया और सामान सुरक्षित स्थान पर रख दिया। उसी समय जब मंजन का खाली डब्बा उठाया तो अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि उस खाली डब्बे के स्थान पर मंजन से भरे हुए दो डब्बे पड़े हैं। मैं बार २ सोचने लगा "स्वामी जी ने मंजन किसी से मंगलवा लिया अन्यथा कौनसा आदमी यहां रात २ में ही मंजन रख कर चला गया।" इस प्रकार की अनेक शंकाएं मेरे मन में उत्पन्न होने लगीं। उस बारे में मौन रह कर ही अपनी अभिलाषा पूर्ण करने लगा। उसी समय स्वामी जी ने मेरी ओर अनुग्रह पूर्वक देखा जिस से मुझे गुरु महिमा का मान होने लगा। इस किंचित् घटना का ही मुझ पर अत्यधिक प्रभाव हुआ परन्तु दृढ़ता में कुछ न्यूनता सी रह गई। कभी २ तो मेरे मन में उसके प्रति प्रश्न सा उठने लगा लेकिन अगली बार फिर कुछ ऐसा हुआ कि वहीं उस मंजन के खाली डब्बे के स्थान पर एक और डब्बा भरा पड़ा मिला। मुझे गुरु देव की लीला का प्रत्यक्ष भान होने लगा। मेरे मन के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर मुझे स्पष्ट रूप से मिल गया। इस के पश्चात् तो मैंने गुरु देव को साक्षात् भगवान् समझ उस में किंचित् भी संदेह करना भगवान् का निरादर माना। परन्तु ऐसी बहुत सी घटना अन्य भक्तों को सांत्वना देने के हेतु आश्चर्य पूर्ण हुई लेकिन अधिक रूप में मैं इस विषय में कभी फिर लिखने का प्रयत्न करूंगा।

भगवान् किस प्रकार अपने प्रिय-जनों का ध्यान रखते हैं। ऐसी घटना का उल्लेख कर रहा हूं।

गुरु देव के वृद्धावस्था को पहुँचे हुए एक प्रेमी रुग्णावस्था में शय्या पर पड़े २ आप को स्मरण कर रहे थे। दिन रात उसका ध्यान आप की ओर रहता। अन्तर्यामी गुरुदेव ने उसकी अवस्था जान कर पंजाब में रहने वाले अपने एक अन्य शिष्य को स्वप्न में ही प्रेरणा की। वह जाकर दिल्ली निवासी उस रोगग्रस्त वृद्धा को सांत्वना दे। उस शिष्य ने स्वप्न में मिले हुए गुरुदेव के आदेश को पालन करने के लिए वृद्धा की ओर प्रस्थान किया। वहां पहुंच कर उस रोगग्रस्त वृद्धा को धैर्य वन्धाया और गुरुदेव की ओर से उसे आशीर्वाद दिया। वृद्धा उनकी स्वप्न की घटना को सुन आश्चर्य चकित रह गया और धन्य २ कर विचारने लगा। किस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से मेरी कुशल-क्षेम की रक्षा की है। दोनों सज्जन ऐसा विचारविनिमय कर रहे थे कि उसी समय उन्हें गुरुदेव का पत्र मिला कि "किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए एवम् भगवान नाम की औषधि का ही सेवन करते रहना।" इस से उन दोनों सज्जनों का आश्चर्य दृढ़ता में परिवर्तित हो गया।

भगवान् से प्रेम करने वाला कभी दुःखी नहीं होता, इसी उद्देश्य का यह ज्वलन्त प्रमाण है। वह वृद्धा आज भी यश शक्ति स्वस्थ है और गुरुदेव की महिमा का गान करती रहती है।

जगबीती के साथ २ कुछ आप बीती भी कह रहा हूं। जिस रूप में मैं आप लोगों की सेवा कर रहा हूं यह स्वामी जी का ही दिया

हुआ है। जब मैं ने गृह त्याग किया था तो उस समय जीवन उपभोग की अपेक्षा मरण के हेतु स्थान ढूंढना ही उद्देश्य था। उस समय मैं ऐसे रोग में ग्रस्त था जो आप पर प्रकट नहीं कर सकता अस्तु मैं ने चिकित्सालय का आश्रय लिया और निराशा के निःश्वासों द्वारा ही भविष्य समाप्त करना चाहा। विवरण तो अत्यधिक है लेकिन स्थान और समय के अभाव में वह समा नहीं सकता। दुर्बल के बल भगवत् भगवान् ने मुझे स्वामी जी के आश्रय में भेजा उन से भेंट कर मैं कृत्य २ हो गया और उन के आश्रय पर चिकित्सा भी छोड़ दी। प्रभु की महिमा देखिये कि वह चरण मुझे औषधि से भी अत्यधिक लाभप्रद हुए। मैं इतना अशक्त था कि उन की सेवा तो क्या अपना भार भी नहीं उठा सकता था। ऐसी अवस्था में भी उन्हों ने मुझे आश्रय दिया और मुझे इतनी शक्ति दी जिस से आज मैं अपने को कर्मठ अनुभव करता हूं। मन की दृढ़ता ही नहीं, शरीर की दृढ़ता भी उन्हीं की दी हुई है। इस के पश्चात् भी कई संकट आए किन्तु भगवान् की दी हुई काया पर उन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

यह संसार माया पूर्ण है। माया के रहित संसार केवल ब्रह्म है। ब्रह्म की माया का भी महत्त्व है, अतएव माया की ही घटना का उल्लेख करता हूं।

"यह उन दिनों की घटना है जब स्वामी जी गुहा के ऊपर वाली कुटिया में निवास करते थे। गुहा के निकटवर्ती पर्वत पर एक सिद्ध संन्यासी भी निवास करते थे। कुछ लोगों का दल उन्हीं सिद्ध

की खोज में अपने स्वार्थ सिद्धि के हेतु, आया। वे लोग गुरुदेव को देख उन्हीं के पास रहने लगा। स्वामी जी ने उनका अभिप्राय: पूछा तो उन्हों ने ज्यों ही टाल दिया "आप के दर्शन के लिए आए हैं जी" स्वामी जी उन के मिथ्या कथन से उदास हो नीचे की ओर गुहा में आ गये। तदनन्तर उन लोगों को सिद्ध योगी का एक पत्र मिला। सिद्धों के पत्र डाक द्वारा नहीं चलते अपितु योग बल द्वारा ही गन्तव्य स्थान पर पहुंच जाते हैं। उस पत्र में लिखा था "आप लोगों ने जो दिव्यात्मा के समक्ष मिथ्या वचन कहे हैं, तुम्हारा यह अपराध क्षम्य नहीं है एवम् जब तक आप उस महापुरुष से अपराध क्षमा न करवायें तब तक मेरी आप की भेंट तो दूर पत्र व्यवहार भी नहीं होगा। ऐसा विश्वास रखना उस योगी ने अपने योग बल से ही गुरुदेव की महानता देखी थी और उनके मिथ्या कथन का भी उसी शक्ति द्वारा पता लगाया था। वह पत्र पढ़कर वे लोग बड़े निराश हुए अतएव अगले दिन ऋषिकेश फल-फूल की टोकरियां ले, स्वामी जी की सेवा में उपस्थित हुए और अपने अपराध के हेतु क्षमा-याचना करने लगे। गुरुदेव ने सब प्रकार से उन्हें तुष्ट कर दिया और अनुग्रह पूर्वक उन्हें विदा किया। स्वामी जी के महान् व्यक्तित्त्व का उन लोगों पर ऐसा प्रभाव हुआ अथवा उस योगी ने ही परिचित करवा दिया कि उन में से एक सज्जन घर बार त्याग स्वामी जी के शरण में आकर रहने लगा है।

इस प्रकार प्रभु की लीलाएं अनेक हैं किन्तु संक्षेप से हेतु केवल एक घटना का उल्लेख कर ही प्रसंग की समाप्ति चाहता हूं।

"एक समय की बात है जब मैं पैदल ही ऋषिकेश से गुहा की

ओर आ रहा था। मार्ग में एक लारी मेरे निकट रुकी और ड्राइवर ने मुझे देखा और आश्चर्य से कहा "स्वामी जी आप पैदल क्यों जा रहे हैं" "ऐसे ही भीड़ के कारण पैदल ही चल पड़ा हूं।" यह मेरा उत्तर था। ड्राइवर ने मुझे अपने निकट ही स्थान दिया, लारी चल दी, वह कहने लगा। "पहले पहल जब यह सड़क खुली थी और कोई किसी से परिचित नहीं था तो उस दिन गुहा के स्वामी जी से भेंट हुई थी। स्वामी जी ऋषिकेश आना चाहते थे। किसी भी लारी-ड्राइवर ने स्वामी जी की ओर ध्यान नहीं दिया तो आप गुहा को लौट आए। भगवान् की इच्छा ऐसी हुई कि गुहा से कुछ ही दूरी पर एक लारी खराव हो गई और मार्ग तंग होने के कारण उस के पीछे लारियों की पंक्ति सी बन गई एवम् कोई भी आगे नहीं जा सकती थी। उस निर्जन वन में सांझ के समय यात्री लोग भयभीत होन लगे। बात की बात में लोगों को स्वामी जी का स्मरण हो आया। कई संसारी अनुभवी यात्रियों ने उस खराबी का कारण स्वामी जी की अवहेलना ही माना। कई लोगों ने इस बात समर्थन किया एवम् स्वामी जी के पास आकर अपना अपराध स्वीकार किया। स्वामी जी ने जानते हुए भी अन्जान बनते हुए उनकी अभिलाषा पूछी। ड्राइवरों ने सब कुछ विस्तार से कह दिया। स्वामी जी ने उन की भूल विस्मृत कर उनकी इच्छा पूर्ति की एवम् चल दिये। दव की इच्छा भी कुछ ऐसी थी। स्वामी जी के लारी पर बैठने मात्र से वह लारी चल पड़ी। एक साथ कई लारियां ऋषिकेश में पहुंचीं। उन में यात्रियों के साथ २ गुरुदेव की ख्याति भी भरी पड़ी थी और उनके साथ ही वह ऋषिशके पहुंच गई। तब से हम ऐसी कदापि भूल नहीं करते कि गुरुदेव क्या उनके किसी शिष्य की ओर भी हम

ध्यान न दें। उस समय भी टेहरी महाराज की ओर से आप के लिए विशेष आदेश थे किन्तु उस समय भावी प्रबल थी।"

वास्तव में यह सत्य है कि मोटर कम्पनी वाले हर प्रकार से प्रभु का कार्य करते हैं। वर्त्तमान मोटर यूनियन के व्यवस्थापक श्री गोविन्द सिंह ध्यानपूर्वक स्वामी जी का कार्य सम्पन्न कराते हैं और यूनियन के कर्मचारी समुदाय भी स्वामी जी के काम पूर्ण रुचि से करते हैं। इस कम्पनी का धन्यवाद हम किस प्रकार करें कि इन्हों ने स्वामी जी की सभी कामों में जैसे स्कूल निर्माण, गुहा का नवीन रूप में भाग लिया है। इतना यह तो स्वामी जी के नाम पर प्रत्येक व्यक्ति की सेवा के हेतु तत्पर रहते हैं। स्वामी सेवा के हेतु ही प्रत्येक साधु को लारी की सुविधा दी जाती है। इसके हेतु हम मोटर यूनियन व्यवस्थापकों और कर्मचारियों के कृतज्ञ हैं और गुरुदेव से उन के कल्याण की कामना करते हैं।

गुरुदेव के चरणों और उन के भक्ति भावकों के प्रेम से अपने श्रम को सफल करने की आशीर्वाद चाहता हूं।

"इतिश्री"

स्वामी जी के जीवन का सिंहावलोकन

स्वामी जी का शरीर छोटा सा है जैसे कोई १६ वर्षीय बालक हो। शरीर का रंग गोरा और गठन पतला है। केशों का रंग (परिपक्व रूप) आकाश वत् है। कर्ण युगल के पीछे लम्बी २ जटायें अत्यन्त शोभनीय हैं। मस्तक के मध्य का किंचित् भाग केश विहीन है। दोनों आंखें चर्म से आच्छादित हैं एवम् उन्हें देखने से ही पता चलता है कि उन में कितना तेज है। ललाट उन्नत है। भृकुटि का निकट वत् स्थान कुछ ऊंचा है। उस से पता चलता है कि यही ब्रह्मचर्य की ओज-शक्ति की राशि है। मस्तक के नीचे नाक और आंखों के बीच एक रक्त-बिन्दु सा दिखाई देता है। ऐसे लक्षण उन्हीं के होते हैं जिन का ध्यान हर समय भृकुटि में लगा रहता है। अरुन्धती का यह लाक्षणीय चिह्न महाराज जी के ललाट पर ही है। उसे सब देख सकते हैं। ये चतुष्टय लक्षण योग के ही साधन होते हैं। नासिका तीर की भान्ति सीधी खड़ी है। आप की भुजाएं घुटनों तक लम्बी हैं। दाहिना पांव कुछ छोटा है। तेजपूर्ण भाव इसी से भास होते हैं। श्वेत दाढ़ी और मुस्कान पूर्ण मुख और भी सौंदर्य-पूर्ण हैं। आप की आकृति कवीन्द्र, रवीन्द्र और योगी अर्विन्द

से मिलती जुलती है। आयु लगभग ८० वर्ष है किन्तु शरीर में शक्ति पर्याप्त है। प्रायः समाधिस्थ ही रहते हैं परन्तु कार्य में पूर्ण स्पृहणीय हैं। आप कर्मयोग का ही उपदेश देते हैं।

गुहा में ही निवास करते हैं किन्तु तन, मन से लोगों की सेवा करते हैं एवम् उन्हें उन्नति पथ पर अग्रसर करने के हेतु प्रायः प्रयत्न-शील रहते हैं। अतः गुहा में ही सिद्ध होकर प्रसिद्ध हो गये हैं।

आप केवल महात्मा ही नहीं अपितु महान् दार्शनिक, कवि और रसिक गायक भी हैं।

ये ज्योतिष का भी अच्छा ज्ञान रखते हैं।

प्रभु जी वैद्य तो हैं ही, अपनी धारणा या सिद्धि से भी दूसरों को लाभ पहुंचाते हैं।

स्वामी जी सब धर्मों को एक मानते हैं। आप समर्थ हैं तथापि कठोर धर्म का पालन करते हैं।

आप अद्वैतवादी अर्थात् निरब्रह्म को ही जानते हैं। इन की भक्ति में परा भक्ति ही रहती है। प्रेम के द्वारा ही आप सब कुछ देखते हैं।

स्वामी जी भागवत् के अच्छे ज्ञाता हैं। आप कथा प्रवचन के रसिक हैं, पारदर्शी हैं और सब को वेदान्त मानते हैं। भागवत् इन का बड़ा प्रिय धर्म शास्त्र है।

आप की रचनाएं

I A peep into geeta (गीता एक दृष्टि में)
II Spritual Talks (अध्यात्मक वार्ता)
III Autobiography (हिन्दी) (आत्म कथा)

इसके अतिरिक्त ये कविताए', गोपाल गीता आदि अनेक सुन्दर पुस्तकें भी लिख चुके हैं। गीता से इन्हें हार्दिक प्रेम है एवम् उसी के सिद्धान्त पर चलते हैं। यथा आहार-विहार का जैसे गीता में निर्देश है, उसी के सिद्धांत पर चलते हैं, मानो उसे अपने जीवन में भर रखा हो। गीता का कर्मयोग और सांख्य योग आप में पाया जाता है। एक ओर स्वामी जी अपने कर्म में युक्त हैं और दूसरी ओर समाधि में लीन।

गुरुदेव शास्त्र, उपनिषिद् योग वशिष्ठ,ब्रह्मसूत्र इत्यादि दार्शनिक तत्त्वों के ज्ञात्ता हैं। आप योग का पूर्ण प्रतिवादन करते हैं।

स्वामी जी तनिक से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। आप प्रसन्न हो भक्तों का मन हर लेते हैं। सेवा कार्यों में आप कुली जैसा परिश्रम करने से भी कठिनता अनुभव नहीं करते अपितु ऐसा कर आप भक्तों के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करते हैं। शारीरिक शुद्धि एवम आत्मिक शुद्धि की ओर विशेष ध्यान देते हैं। अतः इस के हेतु सचाई और ईश भजन को आवश्यक मानते हैं।

सरलता आप का विशेष गुण है। इसी के द्वारा आप प्रत्येक

जन को आकार्षित कर लेते हैं। इस के लिए आप मन, वचन और कर्म की पवित्रता को आवश्यक मानते हैं।

आप गङ्गा ऐसा पवित्र गुहा ऐसा एकान्त और घास फूस की कुटिया में निवास ही भजन के निमित्त उपयुक्त मानते हैं। सत् चित आनन्द आदि रूपों में सत् और चित् को पार कर आनन्द में लीन रहते हैं। इसी से उत्पन्न आप के कथा प्रवचनों से अनेकों नवजीवन एवम् नव-आदर्श ग्रहण कर चुके हैं। इन के सान्निध्य से सब आनन्दमय हो जाते हैं। इसी आनन्द रूप से तन्मय होकर स्वामी जी के अधरों पर मुस्कान खेलती रहती है। गुरुदेव का स्वभाव बड़ा प्रेम और शान्ति मय है। इन्हीं के प्रभाव से गुहा भी शान्ति का प्रयत्न स्वरूप हो गई है।

❀ आप जगत् विख्यात् हैं। ❀

यह है स्वामी जी का जीवन विहंगम दृष्टि में। मुझे आशा ही नहीं, दृढ़ विश्वास है कि जो भी प्राणी इन के स्वरूप अर्थात् इन की तपस्या, गुण, आचार, व्यवहार और विचारो का ध्यान मात्र करेगा, उसे प्रभु-मूर्ति को साकार-रूप दर्शन होंगे। इस से आप को उस आनन्द का कुछ भाग अवश्य मिलेगा।

ओं शान्ति

प्रार्थना
गुरु चरणों में

आदरणीय गुरुदेव।

ओम् सह नाववतु सह नो भुनक्तु सहवीर्यं करवाव है।
तेजस्विनाभवीतमस्तु मा विद्विषाव है।

अर्थ :— हे परमेश्वर ! आप हम गुरु शिष्य दोनो के साथ २ रह कर हमें पूर्णता प्रदान करें।

सादर प्रणाम। आप सर्व व्यापी, सर्व भूतात्मा, परम पुरुष भगवन्मर्यादा पुरुषोत्तम, पुरुषोत्तमानन्द महाराज के स्वरूप में अवतीर्ण हुए। आप की शक्ति का हम पार नहीं पा सकते। आप के स्वरूप को अत्यन्त लघु रूप में प्रस्तुत किया है जो आप के समक्ष तुच्छ है। आप पूर्ण एवम् अव्यक्त हैं। आप का चरित्र वेद रूप है और जीवन एक योगी का है। आप पूर्ण ब्रह्मचारी और शान्त शिरोमणि हैं। आप अनेकों उपाधियों से विभूषित होते हुए भी विशुद्ध तपस्वी हैं, अतः नारायण रूप हैं।

आप ने अपनी कृपा से हमें पवित्र कर दिया है। भक्त कबीर

भी अपनी गुरु महिमा का भान करने में असमर्थ रहे जैसे उन्हीं की बाणी में :—

सब धरती कागद करूं लेखनी सब वनराय।
सात समुंद की मसि करूं गुरु गुण लिखा न जाए॥
अतः मैं तो एक तुच्छ दास हूं।

हे प्रभो! आप तो सब पाप रूप जीवों को अपने पुण्य से कृतार्थ करते हैं। मैं उन्हीं पाप-मय जीवों में से एक हूं। आप अपूर्व फल का सब जन्मों में आभारी रहूंगा।

आप के चरणों में वन्दना करता हूं और करता ही रहूंगा।

प्रार्थी
दासानुदास
कालिकानन्द

प्रेम की सीमा

(मेरे मन में निम्न भाव गुरुदेव के व्यवहार से ही उत्पन्न हुए हैं)

प्रेम नगरी में भ्रमण करना, जैसे भ्रमणे भ्रमरा।
प्रेम ही लेना, प्रेम ही देना, यही कार्य है अतिभला।

प्रेम मन्त्र है वशीकरण का, प्रेम तन्त्र है वैर नाश का।
जगत उसी का, प्रेम है जिस का, प्रेम बिना तो जीवन फीका।

प्रेम ही सम्पद, प्रेम ही धन है, प्रेम है नाना रूप का।
चलो प्रेम से, बोलो प्रेम से, प्याला पियो प्रेम रस का।

प्रेमाकांक्षी
कालिकानन्द